जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2535

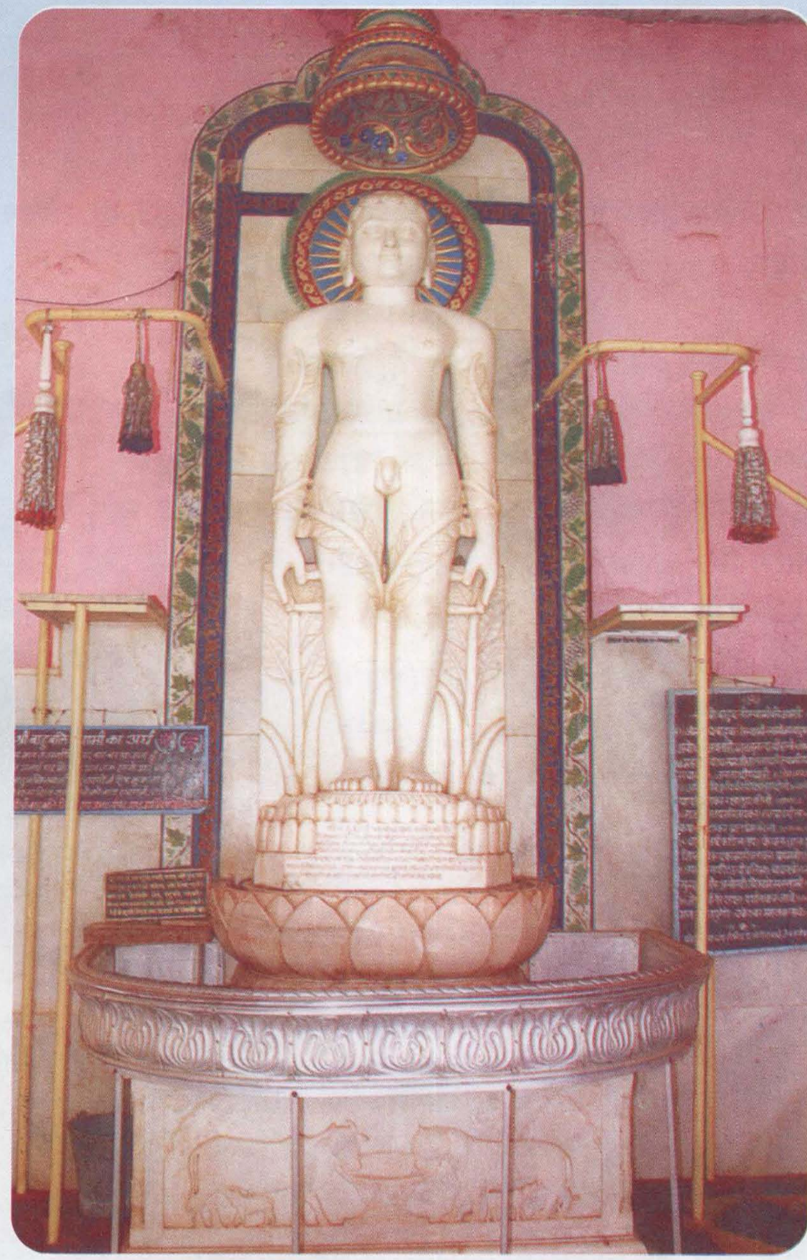

भगवान् बाहुबली

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट (खण्डवा) म.प्र.

चैत्र, वि.सं. 2066

मार्च, 2009

मूल्य 15/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

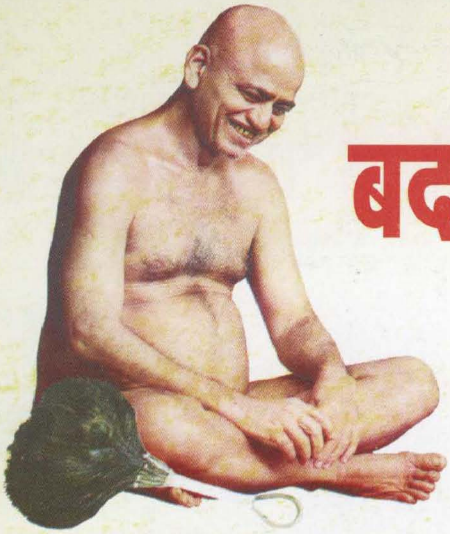

बदले का भाव दलदल है

आचार्य श्री विद्यासागर जी

माटी का काँटे को उपदेश

मन वैर-भाव का निधान होता ही है।
मन की छाँव में ही
मान पनपता है
मन का माथा नमता नहीं
न-'मन' हो, तब कहीं
नमन हो 'समण' को
इसलिए मन यही कहता है सदा—
नमन! नमन!! नमन!!!
बादल-दल पिघल जाये,
किसी भाँति! काँटे का
बदले का भाव बदल जाये
इसी आशय से
माटी कुछ कहती है उससे:
''बदले का भाव वह दल-दल है
कि जिसमें
बड़े-बड़े बैल ही क्या,
बल-शाली गज-दल तक
बुरी तरह फँस जाते हैं
और
गल-कपोल तक
पूरी तरह धँस जाते हैं।
बदले का भाव वह अनल है
जो
जलाता है तन को भी, चेतन को भी
भव-भव तक!
बदले का भाव वह राहु है
जिसके
सुदीर्घ विकराल गाल में
छोटा-सा कवल बन
चेतनरूप भास्वत भानु भी
अपने अस्तित्व को खो देता है
और सुनो!
बाली से बदला लेना
ठान लिया था दशानन ने
फिर क्या मिला फल?
तन का बल मथित हुआ
मन का बल व्यथित हुआ
और
यश का बल पतित हुआ
यही हुआ ना!
त्राहि मां! त्राहि मां!! त्राहि मां!!!
यों चिल्लाता हुआ
राक्षस की ध्वनि में रो पड़ा
तभी उसका नाम
रावण पड़ा।

मूकमाटी (पृष्ठ ९७-९८) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

मार्च 2009 मासिक वर्ष 8, अङ्क 3

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ काव्य : बदले का भाव दलदल है
: आचार्य श्री विद्यासागर जी — आ.पृ. 2
◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ — आ.पृ. 3
◆ मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ — आ.पृ. 4
◆ **सम्पादकीय** : ग्वालियर की पुरासम्पदा और हम — 2
◆ **लेख**
- वादिराज एवं उनकी भक्ति
: आर्यिका प्रशान्तमती जी — 4
- आचार्य श्री विद्यासागर जी का निजामृतपान
: पं० शिवचरणलाल जैन — 8
- कर्मवीरता : डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' — 12
- 'भरतेशवैभव' की अप्रामाणिकता
: डॉ० शीतलचन्द्र जैन — 13
- तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन : पं० महेशकुमार जैन, व्याख्याता — 17
- णमोकारमन्त्र का शुद्ध उच्चारण एवं जाप्यविधि
: पं० आशीष जैन शास्त्री — 21
- महावीर होने के मायने : कैलाश मड़बैया — 23
- चाँदी के वर्क की हकीकत : श्रीमती मेनका गाँधी — 25
- वर्तमान परिवेश में युवाशक्ति का दिशा-निर्धारण
: सुरेश जैन 'सरल' — 27

◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 29
◆ भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मध्यांचल समिति के अध्यक्ष एवं महामंत्री का निवेदन — 32
◆ **समाचार** — 16, 20, 22, 24, 26, 28

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

ग्वालियर की पुरा सम्पदा और हम

गोपाचल पर्वत के विश्व प्रसिद्ध जैन पुरा वैभव के अतिरिक्त ग्वालियर के किले में उपलब्ध जैन पुरातत्त्व की अद्वितीय सामग्री आज भी तत्कालीन दिगम्बर जैन संस्कृति के उत्कर्ष का उद्घोष कर रही है। किले के पहुँच मार्ग पर चढ़ाई के प्रारंभ से ही पहाड़ में उत्कीर्ण जैन तीर्थङ्करों की कलात्मक मूर्तियाँ दिखाई देने लगती हैं। ये पहाड़ में उत्कीर्ण मूर्तियाँ पहाड़ के ऊपर भी दि० जैन पुरातत्त्व के अस्तित्व की सूचक हैं। दि० जैन समाज का प्रमाद कहें या दुर्भाग्य कि वह अपनी पुरातात्त्विक सम्पत्ति की सँभाल एवं सुरक्षा में तनिक भी जागरूक नहीं रहा। फलस्वरूप पहाड़ के ऊपर के दि० जैनमंदिर या तो ध्वंस हो गए या अतिक्रमण के शिकार हो गए। दि० जैन समाज गहरी नींद में सोया रहा और अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित महान् धार्मिक आयतनों की सुरक्षा करने में पूर्णतः असफल रहा।

ग्वालियर के महाराजा सिंधिया ने पर्वत पर एक स्कूल व छात्रावास चला रखा है, जिसके लिए बहुत लम्बी चौड़ी भूमि अधिगृहीत कर रखी है। पर्वत पर पूर्वकाल में रहे दि० जैन मंदिरों की भूमि को भी उन्होंने अपने कब्जे में ले लिया और वहाँ मंदिरों का मात्र नाम शेष रह गया। अभी कुछ समय पूर्व तक अस्तित्व में रहे तीन मंजिले श्रीवर्द्धमानमंदिर को भी महाराजा सिंधिया ने अपने अतिक्रमण का शिकार बना लिया। मंदिर में से जैन प्रतिमाएँ हटाकर कुछ स्कूल के प्रिंसिपल के बगीचे में रखवा दीं, कुछ गायब करवा दीं। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार मंदिर में भगवान् महावीर के उत्सेध की ठोस स्वर्ण से निर्मित प्रतिमा स्थापित थी, उसको गायब कर दिया गया। मंदिर की प्रतिमाएँ तो हटायीं, किंतु वे मंदिर के सामने के द्वारों पर ऊपर उत्कीर्ण जैन प्रतिमाओं को हटा नहीं सके, जो उस भवन के जैनमंदिर होने के सत्य को प्रमाणित कर रही हैं। इसके अतिरिक्त ग्वालियर स्टेट के गजैटीयर में, जो सन् १९०८ में प्रकाशित हुआ था, इस वर्द्धमानजैनमंदिर के अस्तित्व का उल्लेख है। अन्य प्रमाण भी इस जैनमंदिर के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। इस मंदिर के बाहर अँग्रेजों के द्वारा 'JAIN TEMPLE' की पाषाण पट्टिका लगाई गई थी, जिसका फोटो उपलब्ध है, किंतु उस पट्टिका को गायब कर दिया गया है।

श्री ज्योतिरादित्य सिंधिया ने इस मंदिर के चारों ओर दीवार व फैंसिंग लगा कर गार्ड बैठा दिए हैं और जैनियों को मंदिर में जाने से पूरी तरह रोक दिया है। मंदिर के पीछे स्कूल का भोजनालय चल रहा है, जिसमें नित्य अनेक प्राणियों की हत्या कर मांस पकाया जाता है। जैनमंदिर के अस्तित्व को सिद्ध करनेवाले सभी सशक्त प्रमाणों की अनदेखी कर जनता को भ्रमित करने के लिए उस जैनमंदिर के पवित्र भवन को कुतिया-महल के नाम से प्रचारित किया जा रहा है।

जिनके पूर्वज प्रजा का पालन एवं उसकी धार्मिक आस्थाओं का आदर करते हुए धार्मिक स्थानों का संरक्षण करते थे, उन्हीं महाराजा सिंधिया की संतान आज जैन समाज के मंदिर से प्रतिमाएँ हटाकर उस पर अतिक्रमण कर बल प्रयोग द्वारा जैनों को अपने मंदिर में आने से और दर्शन-पूजन करने से रोक रही है और इस तरह उनकी धार्मिक भावनाओं को निष्ठुरतापूर्वक पैरों तले रौंद रही है। सभी धर्मों के अनुयायिओं को अपनी धार्मिक क्रियाओं का संपादन करने की स्वतंत्रता देने एवं धार्मिक आयतनों की सुरक्षा का भरोसा देनेवाली प्रजातांत्रिक सरकार मूकदर्शक बन कर यह अन्याय देखते हुए भी सो रही है।

प.पू. मुनिराज आर्जवसागर जी महाराज ने जब इन पूजनीय प्रतिमाओं और जैन संस्कृति की इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिशय मूल्यवान् पुरासंपत्ति की यह दुर्दशा देखी, तो उन्हें भारी वेदना का अनुभव हुआ। उन्होंने दि० जैन समाज का ध्यान इस दुर्दशा की ओर आकर्षित किया। आततायी सिंधिया के इस आतंककारी अत्याचार से पीड़ित होने पर भी दि० जैन समाज अभी पूरी तरह जागी नहीं है। तथापि पू. मुनिश्री के संबोधन से समाज ने आँखे मलते हुए एक करवट भर ली है। उसने सिंधिया द्वारा श्रीवर्द्धमानमंदिर के चारों ओर निर्मित दीवार के बाहर एक टैंट लगाकर उसके नीचे जिनेन्द्र भगवान् की एक प्रतिमा स्थापित कर वहाँ प्रतिदिन अभिषेक पूजन प्रारंभ किया है। पू. मुनि श्री के सान्निध्य में मण्डलविधान का भी आयोजन किया गया। इस आयोजन में समाज के लोग अच्छी संख्या में एकत्र हुए थे। किंतु सिंधिया के द्वारा दि० जैन समाज के धार्मिक श्रद्धास्थल पर अतिक्रमण कर समाज की अस्मिता पर किए गए आक्रमण का अभी प्रभावी विरोध नहीं किया गया है।

हे दि० जैन बंधुओ! जागो! उठो! और योजनाबद्ध तरीके से आततायी अतिक्रमणकारी के प्रति विरोध प्रकट कर आंदोलन प्रारंभ करो। संकल्प करो कि जब तक हमारे पूजा आराधना के केन्द्र भगवान् महावीर के मंदिर और मूर्तियों को हम अतिक्रमण से मुक्त नहीं करा लेंगे तब तक चैन से नहीं बैठेंगे। इसके लिए ग्वालियर जैन समाज को तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं अन्य सभी प्रतिनिधि संस्थाओं के पदाधिकारियों एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियों की एक बैठक ग्वालियर में आयोजित कर भविष्य की योजना की रूपरेखा तय करना चाहिए। अभी तक हमने न तो जिलाधीश आदि प्रशासनिक अधिकारियों तथा जनप्रतिनिधियों के समक्ष इस अन्याय के प्रति समाज का विरोध प्रकट किया है और न सभाओं एवं जुलूसों द्वारा जनता के सामने सिंधिया का यह आतंककारी कृत्य उजागर किया है। हमारी उदासीनता व निष्क्रियता अत्यंत खेदजनक है। वस्तुत: इस युग में असंगठित और अजागरूक समाज को जीने का अधिकार नहीं है। क्या हमारा स्वाभिमान जागेगा और हम अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित हमारी महत्त्वपूर्ण पवित्र पुरासंपदा की सुरक्षा के लिए संगठित और सचेत होकर तुरंत ही ठोस कदम उठायेंगे?

मूलचन्द लुहाड़िया

'जिनभाषित' (हिन्दी मासिक) के सम्बन्ध में तथ्यविषयक घोषणा

प्रकाशन स्थान	:	1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक-प्रकाशक	:	रतनलाल बैनाड़ा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा - 282 002 (उ.प्र.)
सम्पादक	:	प्रो. रतनचन्द्र जैन
पता	:	ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा, भोपाल - 462 039 (म.प्र.)
स्वामित्व	:	सर्वोदय जैन विद्यापीठ, 1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.)

मैं, रतनलाल बैनाड़ा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

रतनलाल बैनाड़ा, प्रकाशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वादिराज एवं उनकी भक्ति

आर्यिका प्रशान्तमती जी
संघस्था आ० विशुद्धमती जी

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे॥

-हे भगवन्! मेरी भक्ति प्रतिदिन श्री जिनेन्द्र देव में ही रहे, श्री जिनेन्द्रदेव में ही रहे, श्री जिनेन्द्रदेव में रहे तथा जिनेन्द्र के चरणकमलों की भक्ति भव-भव में मुझे सदा प्राप्त हो, सदा प्राप्त हो, सदा प्राप्त हो।

जैसे घर में नेता का चित्र देखकर नेता बनने की, कवि का चित्र देखकर कवि बनने की इच्छा होती है, क्षत्रिय-वीर का चित्र देखते ही क्षत्रियत्व जाग उठता है और सिनेमा, टेलीवीज़न आदि में तरह-तरह के रागरञ्जित चित्रों को देखकर जीवन इन्द्रियसुखों के लिए छटपटा जाता है, ठीक इसी प्रकार वीतराग प्रभु के दर्शन से, उनकी छवि देखने से, निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्तों के दर्शन करने से वीतराग भाव प्रगट होते हैं, शांति मिलती है। वीतराग भगवान् की निर्विकार शांत मुद्रा निर्मल दर्पण के समान है। जैसे दर्पण में अपना मुख देखने से मुख की स्वच्छता और मलिनता एक साथ सामने आ जाती है, उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक भगवान् के गुणगान करने से तथा तन्मय होकर भक्ति-उपासना और दर्शन करने से अपने शुद्ध स्वरूप का और अपनी मलिन दशा का बोध सहज ही हो जाता है। अतः अध्यात्मवादी जैनदर्शन में भगवान् की भक्ति-उपासना करने का समुचित एवं सयुक्तिक विवेचन दर्शाया गया है। प्रवचनसार में भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी लिखते हैं-

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

जो व्यक्ति अरहंत भगवान् को गुणपर्यायसहित भली-भाँति जान लेता है, उसे अपने आत्मस्वरूप की पहचान हो जाती है, क्योंकि अपने स्वरूप और शुद्ध दशा के ज्ञान से उसका आत्म विषयक मोह निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

जैसे किसी व्यक्ति को हीरा, पन्ना, मोती आदि जवाहरात खरीदना है, तो उसे सर्वप्रथम जौहरी के यहाँ जाना पड़ेगा। यदि वह कपड़े के व्यापारी के पास जाता है, तो वह रत्नों को प्राप्त नहीं कर सकता है। दूसरे, किसी को कपड़ा खरीदना है, तो उस व्यक्ति को कपड़े के व्यापारी के यहाँ जाना पड़ेगा। इसी प्रकार जिसको जिस चीज की आवश्यकता है, वह वस्तु जिसके पास है उसके पास उसे जाना पड़ेगा। वैसे ही हमें वीतरागभाव की आवश्यकता है, तो हमें वीतरागी के पास जाना पड़ेगा, वीतरागी देव एवं गुरुओं की शरण लेनी पड़ेगी। वीतराग प्रभु के बताये हुए मार्ग पर स्वयं चलनेवाले एवं वीतराग धर्म का उपदेश देनेवाले निर्ग्रन्थ गुरुओं की शरण लेनी पड़ेगी। जो वीतराग प्रभु के बताये हुए मार्ग पर चलने एवं वीतरागधर्म का उपदेश देने से रहित हैं, वे अपनी शरण में आनेवाले को रागरहित कैसे बना सकते हैं? कदापि नहीं। जैसे कोई विद्यार्थी डॉक्टरी पास करके आया है, उसे प्रेक्टिस करनी है, यदि वह बड़े से बड़े वकील के पास जायेगा, तो वह डॉक्टरी के अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता है, उसे तो किसी पुराने-अनुभवी डॉक्टर के पास ही काम करना पड़ेगा। वैसे ही जो स्वयं दुःखी है, स्वयं भयभीत है, स्वयं राग-रञ्जित है, स्वयं परिग्रही है, वह दूसरों को सुखी, निर्भय, वीतरागी, अपरिग्रही कैसे बना सकता है? अतः सिद्ध है कि वीतरागी की शरण से ही वीतरागता की प्राप्ति होगी।

कोई रोगी व्यक्ति बीमारी से मुक्त होने के लिए अच्छे चिकित्सक के पास जाता है। वहाँ जाकर वह चिकित्सक से कहता है कि, आप मुझे कोई ऐसी औषधि दीजिए कि मेरा रोग शीघ्र शांत हो जाय। वहाँ जाकर वह रोगी और कोई पूँछताछ नहीं करता है कि आपका नाम क्या है? आप कौन सी यूनिवर्सिटी में और कहाँ तक पढ़े हो। वह तो मात्र एक ही बात कहता है कि आप मुझे शीघ्र औषधि देकर रोगमुक्त कीजिए, किन्तु वह रोग से मुक्त तभी हो सकता है, जबकि उसको चिकित्सक के गुणों के प्रति दृढ़ विश्वास हो। उसी प्रकार वीतरागी देव एवं गुरुरूपी वैद्य के प्रति होनेवाली अटल श्रद्धा ही हमारे रागद्वेष रूपी रोग को दूर करने में समर्थ है।

अब प्रश्न होता है कि 'भक्ति' क्या है? भक्ति का क्या अर्थ है? आचार्य भगवन्तों ने इसका समाधान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देते हुए कहा कि '**गुणेष्वनुरागः भक्तिः**' अर्थात् अपने आराध्य के गुणों में अनुराग होना भक्ति है। 'भक्ति' का अर्थ 'गुणों में तन्मयता' भी है। अथवा सिद्धि को प्राप्त हुए शुद्धात्माओं की भक्ति द्वारा आत्मोत्कर्ष का नाम ही 'भक्ति योग' अथवा 'भक्ति मार्ग' है और उनके गुणों में अनुराग को, तदनुकूल वर्तन को अथवा उनके प्रति गुणानुरागपर्वूक आदर-सत्कार रूप प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं, जो कि शुद्धात्मवृत्ति की उत्पत्ति एवं रक्षा का साधन है। अपने उपास्य के स्वरूप में एकाकार होना भक्ति की साधना है। जब तक अपने स्वभाव को अपने आराध्य के साथ तन्मय नहीं बनायेंगे, तब तक हम वास्तविक भक्तिरस के मूल को नहीं पा सकते हैं। उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र के मंगलाचरण में कहा है, '**वन्दे तद्गुण-लब्धये**' अर्थात् मैं आपके जैसे गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना, नमस्कार, भक्ति करता हूँ। यदि वर्षों पूजाप्रक्षाल कर, घण्टानाद कर, दीप जलाकर जयजयकार करने के उपरान्त भी तद्गुणलब्धि नहीं हुई तो समझो कि 'भक्ति' का शाब्दिक अर्थ भी पल्ले नहीं पड़ा, उसके भावात्मक अधिग्रहण का तो प्रश्न ही दूर है।

'**भावविशुद्धियुक्तो ह्यनुरागो भक्तिः**'। अर्थात् भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना भक्ति है (स. सि. ६/२४)

'**अर्हदादिगुणानुरागो भक्तिः**।' अर्हदादि के गुणों से प्रेम करना भक्ति है (भ० आ० / वि० / ४७ / १५९ / २०)

स्तुति, प्रार्थना, वंदना, उपासना, पूजा, श्रद्धा, सेवा और आराधना ये सब भक्ति के ही नामन्तर हैं। जिनागम में स्तुति, पूजा, वंदना, उपासना आदि के रूप में इस भक्तिक्रिया को सम्यक्त्व-वर्द्धिनी क्रिया बतलाया है।

सद्भक्ति के अहंकार के त्यागपूर्वक गुणानुराग बढ़ने में प्रशस्त अध्यवसाय की उपलब्धि होती है और उन प्रशस्तपरिणामों की विशुद्धि से अनादिकाल से संचित कर्म एक क्षण में नष्ट हो जाते हैं। जयधवला टीका में जिनभक्ति अथवा जिनदेव को किये गये नमस्कार को कर्मक्षय का हेतु कहा है- '**अरहंतणमोक्कारो संपहि-यबंधादो असंखेज्जगुणकम्मक्खयकारओ त्ति तत्थ वि मुणीणं पवुत्तिप्पसंगादो**' (ज. ध. पु. १ / पृ. ९)। अर्थात् अरहंत भगवान् को किया गया नमस्कार तत्कालबंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा का कारण है।

जैसे काष्ठ के एक सिरे में अग्नि लगने से धीरे धीरे सारा काष्ठ भस्म हो जाता है, वैसे जिनभक्ति से पूर्वसंचित कर्मों का नाश होता है। जिनभक्ति से आत्मीय गुणों के अवरोधक कर्मों का अनुभागखण्डन, स्थिति-खण्डन और बन्धोपशमन हो जाता है, जिससे आत्मीक गुणों का विकास होता है, इसलिए जिनभक्ति आत्मगुणों के विकास में कारण है-

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्य-प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम्॥

इस प्रकार जिनसेनाचार्य ने स्तुति का फल मोक्ष-सुख कहा है। इसलिए भक्ति मोक्ष का कारण है। जैसे बाँस के आश्रय से नट ऊँचा चढ़ने में सफल हो जाता है, उसी प्रकार भक्तिरूपी सोपान के द्वारा यह आत्मा उन्नत अवस्था को प्राप्त हो जाता है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय, तो वीतरागता के प्रति उत्पन्न हुई श्रद्धा-भक्ति एवं गुणानुराग ही आगे चलकर भक्त के गुणों का विकास करता है और उसका पुरुषार्थ उसे भगवान् बना देता है। सौधर्म इन्द्र भगवान् के पंच-कल्याणकों के अवसर पर गुणानुरागपूर्वक विभोर होकर की गई भक्ति के प्रसाद से ही अपने पूर्व भवांतरों में बद्ध कर्म-बधंनों को शिथिल व जीर्ण-शीर्ण करता है, तथा इस भक्ति की प्रक्रिया से ही वह एक-भवावतारी बन जाता है।

आचार्यप्रवर वादीभसिंह सूरि ने अपने '**क्षत्रचूड़ामणि**' ग्रंथ में भक्ति का माहात्म्य प्रकट करते हुए भक्ति को मुक्ति का साधन निरूपित किया है। '**जिनभक्तिः सती मुक्त्यै क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।**' अर्थात् सही रूप में की गई जिन-भक्ति जब कि मुक्ति-प्राप्ति का कारण हुआ करती है, तब वह अन्य छोटे कार्यों को क्या सिद्ध न करेगी? अर्थात् अवश्य करेगी। स्वामी मानतुङ्गाचार्य के अनुसार-

त्वत्संस्तवेन भव संतति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारम्॥

अर्थात् हे भगवन्! आपके गुणों का संस्तवन करने से प्राणियों के भव-भवान्तरों में संचित पाप क्षणभर में उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे रात्रि का भौंरों के समान काला लोकव्यापी अंधकार प्रातःकाल सूर्य की किरणों से तुरन्त ही विलय को प्राप्त हो जाता है। आगे चलकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे कहते हैं-

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥

अर्थात् हे भगवन्! आपका निर्दोष स्तवन करना तो दूर, आपका नामस्मरण या कथा करने मात्र से ही जगत् के जनों के पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे सूर्य के दूर रहने पर भी उसकी प्रभामात्र से सरोवरों मे कमल खिल जाते हैं।

इसलिए कहा है कि भक्ति और मुक्ति के लिए जिन-चरणारविन्द का मधुप होना अनिवार्य है क्योंकि जिनेन्द्र-चरण-कमलों का भ्रमर जन्म, जरा और मरण की बाधा से मुक्त हो जाता है।

जैन साहित्य में भक्तिरस की अविरल धारा प्रवाहित करनेवाली अनेक पुनीत एवं आत्मकल्याणकारी रचनाएँ हैं, जिनके शब्द-शब्द से भक्तिरस की कल-कल-निनादकारिणी शत-शत धारायें प्रवाहित होती हैं। समन्त-भद्रस्वामी, मानतुङ्गाचार्य, कुमुदचन्द्रचार्य, वादिराज आदि महर्षियों ने सकंट के समय भक्तिरस से भरे हुए अनेक स्तोत्र रचे हैं, तथा उनके बल पर धर्म की महती प्रभावना की है।

आचार्य वादिराज का समय प्रायः विक्रम की ११वीं शताब्दी माना गया है। श्रवणबेलगोल के 'मल्लिषेण-प्रशस्ति' शिलालेख में (जो शक. सं. १०५० में उत्कीर्ण हुआ है) लिखे हुए प्रशंसात्मक पद्यों से स्पष्ट ज्ञान होता है कि वादिराज अपने समय के एक प्रसिद्ध तार्किक और वाद-विजेता विद्वान् थे। उनके सामने प्रवादियों का गर्व चूर हो जाता था। राजा जयसिंह की राजधानी सिंहपुर में उनका विशेष प्रभाव एवं महत्त्व विद्यमान था। वे उस समय के प्रायः सभी विद्वानों में शिरोमणि गिने जाते थे। 'मल्लिषेणप्रशस्ति' के प्रशंसात्मक पद्यों में से एक पद्य द्रष्टव्य है-

आरुह्याम्बरमिन्दुबिम्ब-रचितौत्सुक्यं सदा यद्यश-
श्छत्रं वाक्चमरीजराजि-रुचयोऽभ्यर्णं च यत्कर्णयोः।
सेव्यः सिंहसमर्च्य-पीठ-विभवः सर्व-प्रवादि-प्रजा-
दत्तोच्चैर्यकार-सार-महिमा श्रीवादिराजो विदाम्॥

अर्थात् जिनका यशरूपी छत्र आकाश में व्याप्त था और जिसने चन्द्रमा में उत्सुकता अत्पन्न कर दी थी अर्थात् उनका यश चन्द्रमा से भी अधिक समुज्ज्वल था, स्तुतिवाक्यरूपी चमर-समूह की किरणें जिनके कानों के समीप पड़ती थीं, तथा जयसिंह नरेश से जिनका सिंहासन पूजित था और सर्वप्रवादि प्रजा उच्च स्वर से, जिनका जयजयकार गाया करती थी, ऐसे आचार्य वादिराज विद्वानों के द्वारा सेवनीय हैं। सिद्धान्तशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् होते हुए भी आचार्य वादिराज की व्याकरण, काव्य, कोश और अलंकारादि विषयों में अच्छी गति थी। आप एक साहित्यिक कवि ओर प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे। आपकी षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति, जगदेकमल्लवादि आदि अनेक उपाधियाँ थीं जैसा, कि निम्न शिलावाक्य से प्रकट है-

'षट्तर्कषण्मुखरुं स्याद्वादविद्यापतिगलुं जगदे-कमल्ल-वादिगलुं एनिसिद श्री वादिराजदेवरुम्।'

वादिराजसूरि की प्रशंसा में अन्यत्र लिखा है-वादिराजसूरि सभा में बोलने के लिए अकलंकदेव के समान हैं और कीर्ति में न्यायबिन्दु आदि प्रसिद्ध ग्रंथों के कर्त्ता, बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति के समान हैं। वचनों में बृहस्पति के समान हैं और न्यायवाद में अक्षपाद के समान हैं। इस तरह से वादिराज इन भिन्न-भिन्न धर्म-गुरुओं के एकीभूत प्रतिनिधित्व के समान शोभित होते हैं।

आचार्य वादिराज की इस समय तक छह कृतियों का पता चलता है। **एकीभावस्तोत्र, पार्श्वनाथचरित, काकुत्स्थ्यचरित, यशोधरचरित, न्यायनिविश्चियविवरण** और **प्रमाणनिर्णय**। एकीभावस्तोत्र सरस और भक्तिरस-रूप-माधुर्य से ओत-प्रोत है। इसकी श्लोक-संख्या २५ है, छन्द मन्दाक्रान्ता है। स्तोत्र की रचना संस्कृत भाषा में मृदु, सरस और पद-लालित्य को लिये हुए हैं। जैनधर्म की मान्यता के अनुसार इस स्तोत्र में सच्चे देव के स्वरूप का अच्छी तरह से प्रतिपादन किया गया है। इस स्तोत्र की विशेषता यह है कि 'भक्तामर', 'कल्याणमन्दिर' आदि अन्य स्तवनों की तरह इसमें किसी एक तीर्थंकरविशेष की स्तुति नहीं की गई है।

एकीभावस्तोत्र के प्रथम श्लोक में भक्ति का माहात्म्य प्रकट करते हुए वादिराज मुनिराज कहते हैं-

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवौ भक्तिरुन्मुक्तये चे-
ज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽवरस्तापहेतुः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् हे जिनेन्द्र! जब कि आपकी समीचीन भक्ति द्वारा चिरपरिचित और अत्यंत दु:खदायी एवं आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिले हुए कर्मबन्धन भी दूर किये जाते हैं, तब दूसरा ऐसा कौनसा सन्ताप का कारण है जो कि इस भक्ति के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता अर्थात् दु:ख के सभी कारण नष्ट किये जा सकते हैं। जिनेन्द्र भगवान् रूपी सूर्य जन्म-जन्मान्तर के पापरूपी अन्धकार का नाश करनेवाला है। भक्तिपूर्वक किये हुए भगवान् के स्तवन मात्र से पुरातन विषम रोग दूर होकर शरीर निरोग बन जाता है। भगवान् के गर्भ में आने के पहले ही जब पृथ्वी सुवर्णमयी बन गई, तो अन्त:करण-रूप मंदिर में आपको विराजमान करने से कुष्ठ जैसे भयंकर रोग भी नष्ट हो जाएँ, इसमें कौन सी बड़ी बात है?

भक्ति-विभोर वादिराज मुनिराज कहते हैं कि अरिहंत भगवान् जब केवली अवस्था में विहार करते हैं, तब देवगण उनके पवित्र चरणों के नीचे कमलों की रचना करते हैं। चरणकमल से बिना स्पर्शित कमल भी सुवर्ण-सी कान्तिवाले सुगन्धित एवं लक्ष्मी के निवास बन जाते हैं फिर तो मेरे मन-मंदिर में जिनप्रतिमा का सर्वांग रूप से स्पर्श हो रहा है जिससे मुझे सर्व सुख की प्राप्ति हो जायगी। भक्तिरूपी पात्र से आपके अमृतरूपी वचनों को पीनेवाले भव्य पुरुषों को रोगमयी काँटे कभी पीड़ा नहीं दे सकते। आपके शरीर के पास से बहनेवाली वायु भी लोगों के तरह-तरह के रोग दूर कर देती है।

जिनके हृदय में भक्ति के झरने झर रहे हैं, ऐसे वादिराज मुनिराज बता रहे हैं कि बिना भक्ति के, शुद्ध ज्ञान-चारित्र के रहते हुए भी, मोक्ष के कपाट नहीं खोले जा सकते।

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावंचिका कुंचिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो,
मुक्तिद्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कपाटम्॥

अर्थात् हे नाथ! शुद्ध ज्ञान और चरित्र के रहते हुए भी यदि आपके विषय में होनेवाली उत्कृष्ट भक्ति-रूपी कुंजी नहीं हो, तो अत्यन्त मजबूत महामोहरूपी ताले से युक्त मोक्ष का कपाट किस तरह खोला जा सकता है? अर्थात् नहीं खोला जा सकता है।

वादिराज मुनिराज के जीवन से संबंधित एक किंवदन्ती है। एक समय आचार्य वादिराज को कुष्ठ रोग हो गया। राजा जयसिंह के दरबार में चर्चा चली कि 'दिगम्बर साधु कोढ़ी होते है'। तब गुरुभक्त श्रावक ने कहा कि हमारे गुरु कोढ़ी नहीं होते हैं। चर्चा के अंत में निर्णय हुआ कि महाराज स्वयं चलकर देखेंगे। गुरुभक्त श्रावक चिंतित होता हुआ आचार्यश्री के पास गया और कहने लगा कि अब जिनशासन की, जिनधर्म की लाज रखना आपके हाथ में है। आचार्यश्री ने कहा- चिन्ता की कोई बात नहीं है, धर्म के प्रसाद से सब ठीक होगा। आचार्यश्री को स्वयं शरीर के प्रति राग नहीं था। अर्थात् अपना शरीर स्वर्णमयी बनाने की कोई अभिलाषा नहीं थी, पर सारे दिगम्बर साधुओं के ऊपर जो लांछन आ रहा था, उन गुरुओं की रक्षा के लिए ही आचार्यश्री ने जिनेन्द्र भगवान् के गुणों में एकाग्रचित्त होकर एकीभाव स्तोत्र की रचना की। स्तवन के माहात्म्य से कुष्ट रोग दूर होकर शरीर सुवर्ण जैसी कान्तिवाला हो गया। दूसरे दिन राजा ने स्वयं वादिराज मुनिराज के सुवर्ण समान कान्तिमय शरीर को देखा और दरबार में जिसने निंदा की थी उसकी तरफ रोषभरी दृष्टि से देखा। मुनिराज ने कहा- राजन्, गुस्सा न कीजिये, उसने जरा भी असत्य नहीं कहा है, उस समय मैं सचमुच कोढ़ी था। धर्म के प्रभाव से आज ही मेरा कुष्ठ रोग दूर हुआ है। रोग का कुछ अंश अब भी इस कनिष्ठा अँगुली में मौजूद है। यह जिनेन्द्र भक्ति का ही प्रभाव है।

इस कथानक से, मनुष्यों को जैनधर्म की 'भक्ति से शक्ति' का परिज्ञान कर, निरन्तर जिनेन्द्र-भक्ति में तत्पर रहते हुए, अपने कर्म-बंधनों को शिथिल करना चाहिए।

भक्ति से शक्ति, शक्ति से युक्ति और युक्ति से मुक्ति मिलती है। अत: प्रत्येक भव्यात्मा को भक्ति के माध्यम से शाश्वत सुख की प्राप्ति का समीचीन पुरुषार्थ करना चाहिए।

वात्सल्यरत्नाकर (द्वितीय खण्ड) से साभार

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥
जो रहीम मन हाथ है, तो तन कितहि न जाहि।
जल में ज्यों छाया परे, काया भीजत नाहि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री विद्यासागर-कृत निजामृतपान

पं० शिवचरणलाल जैन

विश्ववन्द्य आ० कुन्दकुन्दस्वामी-रचित अध्यात्म की महान् कृति 'समयप्राभृत' पर व्याख्याकार आ० अमृचन्द्र जी ने 'आत्म ख्याति' टीका का प्रणयन किया है। प्रस्तुत टीकारूपी भवन के शिखर-समान मध्य-मध्य में 'कलश' काव्यों को समाहित किया है। इन कलश-काव्यों से समयसार की आध्यात्मिकता मुखरित हुई सी जान पड़ती है। अध्यात्म-अमृत का स्थायी-भाव इनमें उद्दीपित होता हुआ, विशेष मधुरिम गति से, संचरण करता हुआ, छलकता हुआ, उत्कृष्टता को प्राप्त दृष्टिगोचर होता है। इसी हेतु मनीषियों ने इस कलश काव्य को 'अध्यात्म-अमृत-कलश' सार्थक संज्ञा प्रदान की है। पण्डितप्रवर बनारसीदास के शब्दों में 'नाटक सुनत हिय फाटक खुलत हैं' यह सार्थक है, अत्यन्त उपयोगी है।

वर्तमान में सन्त शिरोमणि प० पू० आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ज्ञान-ध्यान-तपोलीन होकर अध्यात्म-क्षेत्र में अग्रणी हैं। सन्मतियुग के ऋषितुल्य उनका जीवन स्व के साथ परहित में सदैव व्यतीत हो रहा है। वे जिनवाणी की सेवा में अपने गुरु स्व० प० पू० आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की परम्परा को अग्रेषित कर रहे हैं। उन्होंने अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा जो अनुभव प्राप्त किया है, उसे निरन्तर लेखन, वाचन और प्रवचन के माध्यम से प्रसारित कर रहे हैं। उन्होंने अध्यात्मी विविध विधाओं में अनेकों ग्रन्थों की रचना की है। इस प्रकार वे निर्ग्रन्थ होकर भी सग्रन्थ हैं। धर्मप्रभावना ही उनका परम एवं चरम लक्ष्य है। वे इस हेतु उत्कृष्ट मानदण्ड सिद्ध हुए हैं।

आ० श्री विद्यासागर जी महाराज ने वीरनिर्वाण संवत् २५०४ में उपर्युक्त समयसार-कलश का रोचक पद्यानुवाद किया था। निम्न दोहे से यह प्रकट है,

देव-गगन-गति-गन्ध की वीर जयन्ती आज।
पूर्ण किया इस ग्रन्थ को निजानन्द के काज॥

प्रस्तुत ग्रन्थ का अन्तिम छंद

देव (४ भेद), गगन (०), गति (५ भेद, सिद्धगति युक्त), गन्ध (२ भेद) अभीष्ट हैं। '**अंकानां वामतो गतिः**' के आधार पर वीर निर्वाण संवत् २५०४ में महावीर जयन्ती के दिन (दमोह नगर में) '**स्वान्तः सुखाय**' यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया।

निजामृतपान नाम की सार्थकता- 'निजानन्द के काज' उद्देश्य के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में सभी जीवों को निजात्मामृत (अनुभव) पान करने की प्रेरणा है। तीसरे यह ग्रन्थ निजानन्द रूप अमृत (पानक) से परिपूर्ण है, अतः नामकरण यथोचित ही है। आ० श्री ने इस ग्रन्थ का प्रयोजन निम्न दोहे में प्रकट किया है।

अमृत कलश का मैं करूँ पद्यमयी अनुवाद।
मात्र कामना मम रही, मोह मिटे परमाद॥ ७॥

ग्रन्थ-परिमाण- आचार्य अमृतचन्द्र-कृत समयसार कलश के पद्यों की संख्या २७८ है। तद्नुसार ही हिन्दी पद्यानुवाद के रूप में पदों की संख्या भी उतनी है। अर्थात् प्रत्येक कलश का अनुवाद एक ही छन्द में किया गया है। छन्द की 'ज्ञानोदय' संज्ञा प्रकट करती है कि ज्ञान इनमें निरन्तर उदित रहकर अनुभव के रूप में विद्यमान है। अमृतचन्द्र जी के कलश काव्यों में गूढ़ रहस्यपूर्ण क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग भी है एवं वे कलश गम्भीर विस्तृत अर्थ को लिए हुए हैं। परवर्ती आचार्यों एवं विद्वानों ने इस कृति को 'गागर में सागर' माना है। ऐसे विशिष्ट एक कलश काव्य का अनुवाद एक ही छन्द में रचकर उसका भाव हृदयग्राही एवं बोधगम्य बना देना ज्ञान एवं काव्यकौशल ही माना जावेगा। २७८ पद्यों के साथ ही ४२ दोहों एवं १ वसंततिलका छन्द को भी समाविष्ट कर सौन्दर्यछटा को द्विगुणित कर दिया है।

ग्रन्थ में प्रथम ही आद्य मंगलाचरण रूप ७ दोहा छन्द हैं। तीन दोहों में वर्तमान तीर्थशासक भगवान् महावीर देव और शास्त्र एवं गुरु का स्तवन है। पुनः एक दोहे में आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य अमृतचन्द्र तथा दीक्षागुरु आचार्य ज्ञानसागर जी को नमस्कार किया गया है एवं एक दोहे में प्रयोजन व्यक्त किया है। तत्पश्चात् प्रत्येक अधिकार के अन्त में अधिकार के प्रतीकार्थ रूप में दो-दो दोहे प्रकट किये हैं। ये दोहे अधिकार के सार ही हैं। ग्रन्थ के अन्त में समापन संज्ञा से दो दोहे ग्रन्थ-रचना की फलकामना रूप में सुशोभित हैं। पुनश्च अन्तिम मंगलरूप तीन दोहे, सुफलरूप एक दोहा है एवं मंगल-कामना हेतु ७ दोहे रचित हैं। लघुता एवं मूल क्षम्यता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप एक दोहा है। अन्त में स्थान एवं रचना-समय परिचय हेतु दो दोहे सुशोभित हैं। ये दोहे तो कलश पर कलश ही प्रतीत होते हैं।

आचार्यश्री ने 'निजामृतपान' में समयसारकलश के स्याद्वाद अधिकार को दो भागों-'स्याद्वाद अधिकार' और 'साध्यसाधक अधिकार' में विभाजित किया है। कुल मिलाकर निम्न अधिकार हैं-

१. जीवाजीवाधिकार, २. कर्तृकर्माधिकार, ३. पुण्यपापाधिकार, ४. आस्रवाधिकार, ५. संवराधिकार, ६. निर्जराधिकार, ७. बन्धाधिकार, ८. मोक्षाधिकार, ९. सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार, १०. स्याद्वादाधिकार, ११. साध्यसाधकाधिकार। आचार्य श्री ने पं० बनारसीदास के समयार नाटक की भाँति ही स्याद्वाद अधिकार के १७ कलशों को स्याद्वाद अधिकार में तथा १५ कलशों को साध्यसाधक अधिकार में अनूदित किया है। शेष यथावत् हैं। यथास्थान ४२ [(अथवा ४५) तीन दोहे पुनरावृत्ति सहित)] दोहों की समष्टि से ग्रन्थ बहुत सुन्दर रूप में गठित है। एतदतिरिक्त १ वसंततिलका छन्द समापन रूप में है। कुल ३२४ पद्यों की समष्टि है।

भाषा, शैली एवं काव्यगत विशेषताएँ- आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज मूल रूप से कन्नड़भाषी हैं। निजामृतपान के रचनाकाल से पूर्व उत्तर भारत में अल्प समय के प्रवास में हिन्दी भाषा के लेखन, प्रवचन में उन्होंने जो निपुणता प्राप्त की, वह श्लाघ्य है। 'निजामृतपान' के पाठक यह अनुभव नहीं कर पाते कि वे मूलत: कन्नड़भाषी हैं। मातृभाषा से अन्य भाषा को बोल लेना अन्य बात है, किन्तु अनुवाद रूप में काव्यरचना दु:साध्य ही होती है। आचार्यश्री की इस काव्यकृति में भले ही भाषा-परिमार्जितता पूर्ण रूप में प्रकट न होती हो, पर भाव व्यक्त करने में यह समर्थ है। वाक्यविन्यास में भी अपेक्षाकृत सुगठन कहीं-कहीं कम दृष्टिगोचर होता है, एवं किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर व्याकरण-सम्मतता की न्यूनता प्रतीत होती है। वर्ण्य विषय के हार्द को खोलने हेतु एवं छन्द की मात्रिकता बनाये रखने हेतु शब्दों में तोड़ मरोड़ भी दृष्टिगोचर होता है, तथापि वह बाधक नहीं है। कहा भी है,

शब्द यदि हो समीचीन मार्ग से सटे
मिथ्यात्व से नटे,
पारायण से कर्म भार अवश्य घटे, अवश्य घटे।

सन्त की भाषा विशुद्ध हृदय का प्रकटीकरण होती है, अत: वह श्रोता पर उज्ज्वल, अमिट प्रभाव छोड़ती है। एवंविध ही 'निजामृत पान' का पाठक भी अध्यात्म एवं शान्तरस से सराबोर हो जाता है। पुन: पुन: पारायण करने व कंठस्थ करने से उसका आनन्द कई गुना बढ़ जाता है। यथार्थ है-

सन्त की भाषा, विषय कषाय के अन्त की भाषा।
आत्मानुभव बसन्त की भाषा, सविकल्प पर्यन्त की भाषा॥

भाषा का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

सहज ज्ञान से स्वपर भेद को परमहंस यह मुनि नेता।
दूध दूध को नीर नीर को जैसे हंसा लख लेता॥
केवल अलोल चेतन गुण को अपना विषय बनाता है।
कुछ भी फिर करता मुनि बन मुनिपन यहीं निभाता है॥ 59॥
कदापि मिलकर परिणमते नहिं दो पदार्थ नहिं, सम्भव हो।
तथा एक परिणाम न भाता दो पदार्थ में उद्भव हो॥
उभय वस्तु में उसी तरह ही कभी न परिणति इक होती।
भिन्न-भिन्न जो अनेक रहती एकमेक ना इक होती॥ ५३॥

लोकहित एवं अध्यात्म क्षेत्र में जितना महत्त्व भाव का होता है, उतना भाषा एवं शब्द रचना का नहीं होता। यही कारण है कि कबीर की निरी गँवारू, खिचड़ी फक्कड़ी एवं घुमक्कड़ी रचनायें आज भी आमजनों की कण्ठहार बनी हुयीं हैं। एवं पं० बनारसीदास के समयसार कलश की ही व्याख्या रूप लिखे 'समयसार नाटक' की भाषा स्खलित होने पर भी हृदय का स्पर्श करती है। आचार्यश्री की भाषा तो पर्याप्त सुधार को लिए हुए है एवं भावों का प्रकाशन पर्याप्त रूप से सहज स्वाभाविक है। यत: समयसार अन्त:करण से विरक्त गृही अथवा सन्तों का अध्येय है, अत: आज भी उनके संघस्थ जनों में एवं प्रौढ़ स्वाध्यायशीलवर्ग में निजामृतपान निरन्तर पाथेय बना हुआ है। उसका उत्तम प्रभाव स्थापित है।

आचार्यश्री की काव्य शैली समयसार के विषयानुरूप ही कुछ गम्भीर एवं अलौकिक है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। सरसता, सरलता, खुलापन उसमें समाविष्ट है। उसमें रूक्षता न होने से रोचक है। कतिपय स्थलों पर प्रवाह की कुछ न्यूनता काव्य रस के रसिकों को अवश्य खटकेगी, किन्तु आत्महितगवेषी जनों को तो मानो इस शान्तरसदर्पण में परमात्मा के दर्शन होते हैं। जैसे सरिता के तीव्र प्रवाह से नुकीले पाषाणखण्ड भी लुढ़कते-लुढ़कते गोल मनभावन आकार धारण कर लेते हैं, ठीक उसी तरह आचार्यश्री की काव्यधारा से विषय-कषायों का तीव्रतारूप नुकीलापन समाप्त होकर ऋजुता एवं आनन्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त होता है। यही है शैली की सफलता। उनकी शान्त और सरल शैली अवश्य ही विरसता (वैराग्य) को जन्म देती है। प्रवाह पूर्ण, सरल, सुबोध शैली के दर्शन प्रस्तुत ग्रन्थ की निम्न पंक्तियों के माध्यम से करें-

ज्ञान बिना रट निश्चय निश्चय निश्चयवादी भी डूबे।
क्रियाकलापी भी ये डूबे डूबे संयम से ऊबे॥
प्रमत्त बनके कर्म न करते अकंप निश्चल शैल रहे।
आत्मध्यान में लीन, किन्तु मुनि तीन लोक पै तैर रहे॥ १११॥

अनुवाद की प्रामाणिकता एवं प्रतिरूपता के दर्शन हेतु यहाँ मूल संस्कृत कलश प्रस्तुत है-

मग्ना कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये।
मग्ना, ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च॥ १११॥

सम्पूर्ण 'निजामृतपान' ही संस्कृत कलशों का सीधा व मधुर अनुवाद है। अधिकांशतः भाव-अभिव्यक्ती-करण, शब्दानुवाद और वाक्यानुवाद रूप ही ज्ञात होता है। यतः पूर्व की 'समयसार नाटक' हिन्दी पद्यमय टीका उपलब्ध है, जो विस्तृत व्याख्यायुक्त है, अतः एक संक्षिप्त एवं सरलता से आम्नाय एवं कण्ठस्थ करने हेतु एक सादा अनुवाद की आवश्यकता आचार्यश्री को अनुभव हुई होगी, इसी का परिणाम है 'निजामृतपान'।

'निजामृतपान' काव्य-गुणों से सम्पन्न काव्य है। उसमें ओज, माधुर्य, प्रसाद गुण भी विद्यमान हैं। गेयता की दृष्टि से उपयोगी है। कवित्त छन्द के समान ही आकर्षकता से गेय है। आचार्य विद्यासागर जी महाराज संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में काव्यलेखन में सिद्धहस्त हैं। प्रस्तुत कृति छन्द, रस, अलंकार के गुणों से सुशोभित है। इसमें अलंकारों की छटा पग-पग पर दृष्टिगत होकर पाठक का मन मोह लेती है। शब्दालंकार एवं शब्दचयन दोनों ही अद्वितीय प्रतीत होते हैं। अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है, निम्न पंक्तियों में-

रग-रग में चिति रस भरा खरा निरा यह जीव।
तनधारी दुःख सहत, सुख तन बिन सिद्ध सदीव॥
(जीवाजीवाधिकारपुष्पिका-१)

बन्ध किये बिन बन्ध का बन्धन टूटे आप।
महिमा यह सब साम्य की विरागदृग की छाप॥
(निर्जराधिकारपुष्पिका-२)

विश्वसार है सर्वसार है समयसार का सार सुधा।
चेतन रस आपूरित आतम शत शत वन्दन बार सदा॥
असारमय संसार क्षेत्र में निज चेतन से रहे परे।
पदार्थ जो भी जहाँ तहाँ हैं, मुझसे पर हैं निरे निरे॥ ३६॥
आत्मतत्त्वमय चित्रित दिखता कभी चित्र बिन लसता है।
चित्राचित्री कभी-कभी वह विस्मित सस्मित हँसता है॥
तथापि निर्मल बोध धारि के करे न मन को मोहित है।
चूँकि परस्पर बहुविधि बहुगुण-मिले आत्म में शोभित है॥
२७२॥

आचार्यश्री के पद्य काव्यों में सहजता और प्रवाह-पूर्ण काव्यरस का रसास्वादन करणीय है, स्याद्वाद-अधिकार पुष्पिका के निम्न दोहे पर दृष्टिपात करें-

मेटे वाद-विवाद को निर्विवाद स्याद्वाद।
सब वादों को खुश रखे पुनि पुनि कर संवाद॥

वर्ण्य विषय की अभिव्यक्ति- प० पू० आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज उत्कृष्ट रूप से ज्ञान-ध्यान-लीन साधक हैं। त्याग-तपस्या के प्रभाव से उनके ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम हुआ है। वे आगम और अध्यात्म के प्रवर मनीषी हैं। चारों अनुयोगों के अभ्यासी एवं अपार पाण्डित्य के धनी हैं। वे प्रवचन वात्सल्य और प्रभावना की प्रतिमूर्ति हैं। विषय प्रतिपादन की कला में निष्णात हैं। उनका 'समग्र' साहित्य इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

समयसार कलश में जीव, अजीव, आस्रव, पुण्य, पाप, बन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष तत्त्वों का विवेचन है। तदनुरूप ही आचार्यश्री ने इन तत्त्वों का वर्णन बड़ी रोचक शैली में किया है। उनकी विषयानुकूल एवं सीमित शब्दों में प्रकट अभिव्यक्ति प्रशंसनीय है। हृदय से लेकर शब्द तक आते-आते उनका अनुभव मानो प्रकृत विषय का सांगोपांग चित्र प्रस्तुत करता है। निजामृतपान में भी 'अमृतकलश' के भाव का कोई अंश अनुवाद से छूटा नहीं है। यथा-

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः॥
कलश १३९

पद पद पर बहुपद मिलते हैं पर वे दुःखपद परपद हैं।
सब पद में बस पद ही वह पद सुखद निरापद निजपद है॥
जिसके सम्मुख सब पद दिखते अपद दलित पद आपद हैं।
अतः स्वाद्य है पेय निजी पद सकल गुणों का आस्पद है॥
निजामृतपान १३९

प्रस्तुत निजामृतपान में विषय तो आचार्यश्री का स्वयं का नहीं है, वह तो कुन्दकुन्द एवं अमृतचन्द्र जी का ही है। परन्तु वर्ण्य विषय को रोचक, पाचक एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रागविरेचक बनाकर आचार्यश्री ने भव्य जीवों के हिताय इसमें संजोकर प्रस्तुत किया है। इससे श्रोताओं को सरलता से भाव समझ में आने के कारण अवश्य ही सुखानुभूति होती है।

समयसारकलश का विषय निश्चयनय-प्रधान होकर भी अनेकान्तमय है। इसमें जीव के कर्त्ता, अकर्ता, बद्ध, अबद्ध आदि भावों का वर्णन अविरोधी नयदृष्टियों से किया गया है, निजामृतपान में उन विषयों का विवेचन बड़ी सुन्दर पंक्तियों में सर्वत्र किया गया है। आनन्द लें-

एकस्य मूढो न तथा परस्य चितिद्वियोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्वत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव॥

कलश ७१

भिन्न-भिन्न नय क्रमशः कहते आत्मा मोही निर्मोही।
इस विध दृढ़तम करते रहते अपने-अपने मत को ही॥
पक्षपात से रहित बना है मुनिमन निश्चल केतन है।
स्वानुभवी का शुद्ध-ज्ञान-धन केवल चेतन-चेतन है॥

जिनामृतपान ७१

आचार्यश्री ने नयाभासों पर प्रहार कर सर्वत्र स्याद्वादात्मक अनेकान्त की पुष्टि की है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आचार्यश्री भी प्रकरणों पर निर्बाध गति से गमन करते हैं, कहीं भी स्खलन नहीं है। 'निजामृतपान' सन्तों को आत्मानुभव-रूपी आनन्द में डुबोने में समर्थ है। कर्मनिर्जरा का हेतु एवं मोक्षमार्ग में अग्रसर होने हेतु सफल कारण सिद्ध हो सकता है। आचार्यश्री ने स्वयं भी कहा है-

मुनि बन मन से जो सुधी करे निजामृतपान।
मोक्ष ओर अविरल बढ़े चढ़े मोक्ष सोपान॥

(समापन-५)

निजामृतपान विशुद्ध भावना एवं ध्यान अथवा आत्मानुभूति-मूलक ग्रन्थ है। निजात्मा के कल्याण हेतु सार रूप में यह सुधासिंधु ही है। मंगल कामना में दोहों में यह भाव ग्रहणीय है,

विस्मृत मम हो विगत सर्व विगलित हो मदमान।
ध्यान निजातम का करूँ करूँ निजी गुण-गान॥
सादर शाश्वत सारमय समयसार को जान।
गट गट झट पट चाव से करूँ निजामृतपान॥२॥

आचार्य श्री द्वारा रचित दोहे तो इस 'निजामृतपान' रूपी भवन के शिखर पर मानो कलश रूप ही हैं। वैसे तो ग्रन्थ ही मौलिक सा लगता है, परन्तु ये ४५ दोहे तो उनकी निजी मौलिक काव्यनिधि की शोभा हैं। इन दोहों मे कबीर, तुलसी, भूधर, बिहारी एवं बुधजन के सम्मिलित रूप के दर्शन होते हैं। यदि इन दोहों को कृति में स्थान न मिला होता, तो वस्तुतः यह आत्मानन्द-रसिकजनों का उत्कृष्ट कण्ठहार सम्भवतः न बन पाती, जैसे रसपूर्ण कलश यदि छलकता नहीं, तो उसका गौरव प्रसिद्ध नहीं हो पाता, उसी प्रकार निजामृतपान कलश रसपूर्ण होने पर भी दोहों की समष्टि से छलकता हुआ न होता, तो सम्भवतः अध्यात्मरसिकों को पर्याप्त आल्हादित न कर पाता। यह इस कृति की सफलता का मानक है। एकादि दोहों का रसास्वादन करें-

दृग व्रत चिति की एकता मुनिपन साधक भाव।
साध्य सिद्ध शिव सत्य है, विगलित बाधक भाव॥

साध्यसाधक-अधिकार पु.-१॥

साध्य साधक ये सभी सचमुच में व्यवहार।
निश्चयनय मय नयन में समय समय का सार॥२॥

निजामृत के दोहों को भक्ति रस का पुट देकर आचार्यश्री ने उपयोगी बनाया है, ठीक ही है। भक्ति ही समयसार-प्राप्ति का प्रथम सोपान होती है। हृदयकमल को विकसित करने हेतु एवं उसे परम आध्यात्मिक सुगन्ध युक्त करने हेतु यह अनिवार्य कारण है। यही भाव निम्न पद्य में प्रकट किया गया है-

कुन्दकुन्द को नित नमूँ हृदयकुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में जीवन मम घुल जाय॥

प्रारम्भ ४, समापन-३॥

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने प्रारम्भिक मंगलाचरण के रूप में ३ दोहे रचे हैं, पुनः अन्तिम मंगल के रूप में भी उनकी पुनरावृत्ति की है। वे तीन दोहे वर्तमान में आबालवृद्ध को कंठस्थ हैं, जन-जन में उनका प्रचार है। उन तीन में से 'कुन्दकुन्द को ......' आदि ऊपर दोहा लिखा है। अग्रिम दोहे भी उद्‌धृत किये हैं, ये भक्तिक्षेत्र के अलंकार बने हुए हैं।

अमृतचन्द से अमृत है झरता जग-अपरूप।
पी पी मन मन मृतक भी अमर बना सुख रूप।
तरणि ज्ञानसागर गुरो तारो मुझे ऋषीश।
करुणा कर करुणा करो कर से दो आशीष॥

समयसार शुद्ध अध्यात्म एवं द्रव्यानुयोग का ग्रन्थराज है, किन्तु प्रस्तुत अध्यात्म में नीति का समावेश 'निजामृत-पान' की शोभा में चार चाँद लगा रहा है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टव्य है-

मृदुता तन-मन-वचन में धारो बन नवनीत।
तब जप तप सार्थक बने प्रथम बनो भव-भीत॥
समापन-८॥

पापी से मत पाप से घृणा करो अयि आर्य।
नर वह ही बस पतित हो पावन कर शुभ कार्य॥ ७॥

निजामृतपान-विषयक उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह सर्वांगीण रूप से श्रेष्ठ एवं अत्यन्त उपयोगी कृति है। हम तो सन्तों के भक्त हैं, उनकी कृपा के अभिलाषी हैं। उनका जो भी आशीर्वादात्मक शब्दप्रयोग है, हम सभी के लिए मोक्षमार्ग का संकेतक है।

श्याम भवन, बजाजा
मैनपुरी-२०५ ००१ (उ.प्र.)

कर्मवीरता

डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'

जैनधर्म की एक प्रसिद्ध उक्ति है **'जे कम्मे शूरा'**, **'ते धम्मे शूरा'** अर्थात् जो कर्म में वीर होता है, वही धर्म में वीर होता है। हमारा धर्म और हमारी नीति कहती है कि, तुम जिस अवस्था में जागे हो, उससे आगे बढ़ो। अपने जीवन के लिए कोई बड़ा लक्ष्य निर्धारित करो और उसकी पूर्ति में संलग्न हो जाओ। इससे भले ही तुम्हें वह लक्ष्य प्राप्त न भी हो पाये, किन्तु तुम अपने विचार एवं व्यवहार से भटकोगे नहीं। बया पक्षी पूरे मनोयोग से अपना घोंसला जिस तरह बनाता है, उसे कोई बड़े से बड़ा इंजीनियर भी नहीं बना सकता। इसकी विशेषता यह होती है कि इसे चारों ओर से बन्द किया जा सकता है, फिर भी हवा का प्रवेश अविरुद्ध नहीं होता, किन्तु उस पर बरसात का पानी गिरे तो वह अन्दर नहीं आ पाता। यह कर्मकुशलता बया पक्षी ने किससे सीखी? अपने आप से, अपनी रक्षा के लिए, फिर तुम तो मनुष्य हो, अत: कर्म को ही अपना धर्म बनाओ।

हमारे कर्म तभी अच्छे हो सकते हैं, जब उनका लक्ष्य अच्छा हो। कर्मशीलता हमारे अन्दर सकारात्मक ऊर्जा का प्रवेश कराती है, क्योंकि हमारी अन्त:चेतना जिस ओर जागृत होगी, चिन्तन भी तदनुसार होगा। जैसा चिन्तन होगा, शरीर भी वैसा कार्य करेगा। जिस तरह आप सुबह उठते ही सर्वप्रथम जिसे ध्यान में लाते हैं, उसका चित्र अपनी आँखों में सहज ही दिखाई देने लगता है। हमने प्रकाश का साक्षात्कार जड़ता के लिए नहीं किया है बल्कि क्रियाशीलता के लिए किया है। यदि आप के साथ क्रियाशीलता है, तो व्यसन, बुरी आदतें, बुरे विचार साथ-साथ नहीं चल सकते। जो आगे बढ़ना चाहता है उसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार का त्याग करना ही होगा।

जब मनुष्य मोह-तिमिर को काट देता है, तब उसे निजता के दर्शन होते हैं और जब वह निजता को पा लेता है, तब उसे समस्त सृष्टि भली प्रतीत होने लगती है। तो हमारी प्रकृति, हमारा पर्यावरण, हमारी सृष्टि सुरक्षित रहती है और हमारे मनोवांछित कार्य पूरे होते हैं।

हमारे जीवन का प्रस्थान बिन्दु है हमारी चेतना का जागरण, चेतना का विकास। इससे अच्छा लक्ष्य और कोई हो नहीं सकता। जिसे करनी में रस या आनन्द आने लगता है, वह सब ओर से सुरक्षित हो जाता है। निष्क्रियता का नाम ही असुरक्षा है, जिससे बचाव का एक मात्र मार्ग कर्मशीलता है।

हम जो भी कार्य करें वह हमारी रुचि का होना चाहिए। जो रुचिपूर्वक, लक्ष्य बनाकर कार्य करते हैं, उनके कार्य सर्जनात्मक, सकारात्मक एवं सार्थक होते हैं। सकारात्मक सक्रियता मानवजीवन के लिए ऐसा वरदान है, जिससे मन को तो शान्ति मिलती ही है, शरीर भी नीरोग एवं सक्रिय बना रहता है। हमें ऐसा जीवन जीना चाहिए, जिसमें करने के लिए कुछ हो, जिसमें पाने के लिए कुछ हो, जिसमें खोने के लिए प्रतिशत कम और पाने के लिए प्रतिशत अधिक हो। वास्तव में कर्म ही पूजा है, प्रार्थना है, आस्था है, भक्ति है। इसी से जागरण का स्वर मुखरित होता है। जिस व्यक्ति ने सूर्योदय के बाद भी अपने मुँह के ऊपर से मोटी चादर नहीं हटायी है, आँख खोलकर प्रकृति का लालिमायुक्त नजारा नहीं देखा है, वह अपने जीवन में ना सुप्रभात की कल्पना कर सकता है, ना ही उसके जीवन का कभी कायाकल्प हो सकता है। हमारी परम्परा हमें कर्मरत होने का संदेश देती है और हम से अपेक्षा करती है कि बनना ही है, तो कर्मवीर बनो।

एल-६५, न्यू इंदिरा नगर, बुरहानुपर, म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भरतेश-वैभव' की अप्रामाणिकता

डॉ० शीतलचन्द्र जैन

'भरतेश-वैभव' काव्यग्रन्थ रत्नाकर वर्णी द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद द्वारा सन् १९९८ में द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ था। यही संस्करण वर्तमान में उपलब्ध होता है।

इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अध्ययन करने पर इसमें बहुत से ऐसे प्रसंग देखने में आये, जो भरत चक्रवर्ती के चरित्रचित्रणवाले मुख्यतया आचार्य जिनसेन द्वारा रचित आदिपुराण या अन्य किसी भी ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं हैं। इस सम्बन्ध में कुछ बिन्दुओं पर विचार किया जाता है।

१. ग्रन्थ की प्रस्तावना में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में कवि ने कर्नाटक-कविताओं में भरत चक्रवर्ती का स्वतंत्र जीवनचरित्र चित्रित किया है। इससे यह स्पष्ट है कि जैनशासन में जो आगमपरम्परा है, उसके अनुसार यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया। आचार्यों के द्वारा जो भी ग्रन्थ रचे जाते हैं, उनके प्रारम्भ में यह कहा जाता है कि जैसा तीर्थंकर प्रभु ने अथवा गणधर भगवान् ने अथवा विभिन्न आचार्यों ने कथन किया है, वैसा ही मैं कथन कर रहा हूँ। परन्तु इसमें ऐसा कुछ भी नहीं कहा है। अत: 'स्वतंत्र जीवन चरित्र' होने से यह ग्रन्थ कवि की अपनी कल्पना मात्र है, इसे हम आगम की श्रेणी में या प्रथमानुयोग के रूप में नहीं मान सकते।

२. इसके रचयिता रत्नाकर को श्रृंगारकवि उपाधि प्राप्त थी। इसकी विद्वत्ता को देखकर राजकन्या मोहित हो गई, रत्नाकर भी उसके मोह पाश में आ गया। वह उस पर आसक्त होकर शरीर के वायुओं को वश में करके वायुनिरोधयोग के बल से महल में अदृश्य पहुँचकर उस राजपुत्री के साथ प्रेम करता था। यह बात धीरे-धीरे राजा को मालूम होने पर राजा ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया। उस दिन रत्नाकर ने अपने गुरु महेन्द्रकीर्ति से पंचाणुव्रत लेकर अध्यात्मतत्त्व में अपने आप को लगाना प्रारम्भ किया।

उपर्युक्त प्रकरण से स्पष्ट है कि रत्नाकर वर्णी श्रृंगार रस का कवि था और उसका चाल-चलन सही नहीं था। ऐसे व्यक्ति की रचना को हम आगम कैसे कह सकते हैं। वीतरागी पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्र ही जैनागम कहे जाते हैं। ऐसे रागी-द्वेषी कवि की रचना प्रामाणिक नहीं हो सकती।

३. प्रस्तावना में कहा है कि रत्नाकर ने अपने 'भरतेश वैभव' को भी हाथी के ऊपर रखकर जुलूस निकालने के लिए भट्टारक जी से प्रार्थना की। तब भट्टारक जी ने कहा कि उसमें दो-तीन शास्त्रविरुद्ध दोष हैं। इसलिए वैसा नहीं कर सकते हैं। तब रत्नाकर ने इस विषय पर उनसे आग्रह किया एवं कुछ अनबन सी हुई। तो उन्होंने सात सौ घर के श्रावकों को कड़ी आज्ञा दे दी कि इस रत्नाकर को कहीं भी आहार नहीं दिया जाय। तब रत्नाकर अपनी बहन के घर भोजन करते हुए, जिनधर्म से रूसकर आत्मज्ञानी को सभी जाति, कुल बराबर हैं, ऐसा समझकर गले में लिंग बाँधकर लिंगायत बन गया और वहाँ पर वीरशैवपुराण, वसवपुराण, सोमेश्वर-शतक आदि की रचना की।

पाठक स्वयं निर्णय करें कि क्या ऐसे विकृतचरित्र वाला व्यक्ति आगम-सम्मत काव्य का रचयिता हो सकता है? जिस लेखक की जैनधर्म पर श्रद्धा ही न हो, उसका लिखा ग्रन्थ कभी प्रामाणिक नहीं हो सकता।

४. प्रस्तावना के द्वितीय कथानक के अनुसार एक बार रत्नाकर अपने को अपमानित समझकर चला गया। जाते-जाते एक नदी को पार कर रहा था, तब भक्तों ने शपथपूर्वक प्रार्थना की तो भी 'मुझे ऐसे दुष्टों का संसर्ग नहीं चाहिये। मैं आज ही इस जैनधर्म को तिलांजलि देता हूँ।' यह कहकर नदी में डूब गया और एक पर्वत पर चला गया। बाद में राजा के आग्रह पर काव्य में रस दिखाने के लिए 'भरतेशवैभव' की रचना की।

इस कथन से यह स्पष्ट है कि रत्नाकर ने जैनधर्म को तिलांजलि देकर मात्र राजा को प्रसन्न करने के लिए अपनी मर्जी के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना की थी। अत: ऐसा ग्रन्थ कभी प्रामाणिक हो ही नहीं सकता।

५. प्रस्तावना पृ. १९ पर कहा है कि इस ग्रन्थ की रचना में कवि ने अन्य कवियों का अनुकरण नहीं किया है। जो वर्णन उसे स्वयं को पसन्द नहीं आया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था, उसे और ढंग से जहाँ वर्णन करना चाहता था, वहाँ तत्क्षण उसे बदलकर पाठकों को अरुचि उत्पन्न नहीं हो, इस ढंग से वर्णन किया है।

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि रत्नाकर ने इस ग्रन्थ को मात्र लोकप्रसिद्धि के लिए रचा था, तथ्यप्रकाशन के लिए नहीं।

यहाँ तक रचयिता कवि का अप्रामाणिकता का वर्णन किया गया, अब ग्रन्थ के उन प्रसंगों का वर्णन किया जाता है, जो आगम सम्मत नहीं हैं-

१. भाग १ पृ. १४१ पर कहा है कि भरतेश की रानियों की संख्या ९६ हजार है, जब कि अभी महाराजा भरत चक्रवर्ती नहीं बने थे। यह प्रकरण बिल्कुल आगमसम्मत नहीं है।

२. पृ. १७ भाग १ पर लिखा है कि महाराजा भरत ने 'आत्मप्रवाद' नाम के ग्रन्थ की रचना की थी। यह प्रकरण किसी भी पुराण से मेल नहीं खाता।

३. भाग १, पृ. १६८ पर लिखा है कि वे रानियाँ भरतेश के द्वारा निर्मित 'अध्यात्मसार' को पढ़ रही हैं। अर्थात् इस ग्रन्थ की रचना भी महाराजा भरत ने की थी। यह प्रकरण भी बिल्कुल गलत है।

४. भाग १ पृ. १६९ पर लिखा है कि कभी वे शुद्धोपयोग में मगन होते थे, तो कभी शुद्धोपयोग के साधनभूत शुभोपयोग का अवलंबन लेते थे। अर्थात् रत्नाकर कवि को इतना भी आगमज्ञान नहीं था कि क्या कोई राजा राज्य को करते हुए शुद्धोपयोग में मग्न हो सकता है?

५. भाग १ पृ. १७१ पर कहा है कि भरतेश ने सबसे पहले मंदिर में शासनदेवताओं को अर्घ्य प्रदान कर श्री भगवन्त का स्तोत्र व जप किया। यह कथन किसी भी शास्त्र से मेल नहीं खाता। भरतेश के काल में शासनदेवताओं की कल्पना ही नहीं थी।

६. भाग १ पृ. १७९ पर लिखा है कि सम्राट भरत ने जल, चन्दन आदि अष्ट द्रव्यों से अपनी माता की पूजा की । यह कथन एकदम आगमविरुद्ध है।

७. भाग १ पृ. २५० पर लिखा है कि चक्रवर्ती के रत्नों का उपभोग वे स्वत: ही कर सकते हैं। यह भी लिखा है कि कुछ लोग ऐसा वर्णन करते हैं कि भरतेश्वर ने जयकुमार, जो सेनापति रत्न है, उसे भेजकर उसके हाथ से विजयार्द्ध के वज्रकुमार का स्फोटन कराया। परन्तु यह ठीक नहीं है।

इस सम्बन्ध में जब हम आदिपुराण पर्व ३१ श्लोक १२२ को देखते हैं, तो उसमें लिखा है 'अश्वरत्न पर बैठ हुए सेनापति ने 'चक्रवर्ती की जय हो' इस प्रकार कहकर दण्डरत्न से गुफाद्वार का ताड़न किया, जिससे बड़ा भारी शब्द हुआ।' इस आदिपुराण के कथन को जो महान् आचार्य द्वारा लिखित है, रत्नाकर कवि ने गलत बताया है।

८. भाग १ पृ. ३०१ पर लिखा है कि व्यन्तरों ने भरतेश्वर की आज्ञा पाते ही शासन के रक्षक शासक-देवों को खूब ठोका, जिससे उनके सब दाँत टूट गये।

९. भाग १ पृ. २८८ पर लिखा है कि जब जयकुमार ने आवर्तक राजा को भरतेश्वर के सामने पेश किया, तो सम्राट ने अपने पादत्राण को सँभालने वाले चपरासी से कहा कि तुम इसमें लात दो और चपरासी ने बाँये पैर लात मारी।

१०. भरत और बाहुबलि के मध्य में जो दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध हुए थे, उनका इसमें वर्णन ही नहीं है। पृ. ४१४ पर कहा है कि भरतेश ने बाहुबलि से कहा- भाई! अब अपने मुख से मैंने कहा कि मैं हार गया और तुम जीत गये, इस प्रकार भरतेश्वर ने अपनी हार बताई।

यह प्रकरण आदिपुराण से बिल्कुल मेल नहीं खाता है। आदिपुराण पर्व ३६ में लिखा है कि भारत और बाहुबलि के बीच दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध हुए और तीनों में बाहुबलि ने विजय प्राप्त की। रत्नाकर कवि ने पूरा 'भरतेशवैभव' अपनी इच्छानुसार लिखा है, अत: अप्रामाणिक है।

११. भाग १ पृ. ४१५ पर लिखा है कि भरतेश्वर ने चक्ररत्न को बुलाकर कहा कि 'चक्ररत्न! जाओ।' तुम्हारी मुझे जरूरत नहीं, तुम्हारा अधिपति यह बाहुबलि है। जब चक्ररत्न आगे नहीं गया, तब भरतेश्वर क्रोध से कहने लगे अरे चक्रपिशाच! मैं अपने भाई के पास जाने लिए बोलता हूँ, तो भी नहीं जाता है, इस प्रकार कहते हुए उसे धक्का देकर आगे सरकाया, परन्तु वह आगे नहीं बढ़ा।

इस प्रसंग के सम्बन्ध में आदिपुराण पर्व ३६ श्लोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६ में इस प्रकार कहा है- 'स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरत के समीप आया, भरत ने बाहुबलि पर चलाया, परन्तु उनके अवध्य होने से वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तेजरहित हो उन्हीं के पास जा ठहरा। अतः रत्नाकर कवि का प्रसंग बिल्कुल आगम विरुद्ध है।

१२. भाग १ पृ. १४१ पर लिखा है कि भरतेश्वर की ९६ हजार रानियाँ हैं। परन्तु इसके बाद भी पृ. २६५ पर ३०० कन्याओं से, पृ. २७१ पर ३२० कन्याओं से, पृ. २७२ पर ४०० कन्याओं से तथा पृ. ३३० पर २००० कन्याओं से शादी की चर्चा है।

इससे ध्वनित होता है कि भरतेश्वर की ९६ हजार से भी अधिक रानियाँ थीं, जो आगमसम्मत नहीं है।

१३. भाग २, पृ. ४ पर लिखा है कि बाहुबलि मुनिराज के मन में शल्य थी कि यह क्षेत्र चक्रवर्ती का है। मैं इस क्षेत्र में अन्न-पान ग्रहण नहीं करूँगा। इस गर्व के कारण उनको ध्यान की सिद्धि नहीं हो रही थी। जब कि आदिपुराण पर्व ३६ में श्लोक १८६ में स्पष्ट लिखा है कि बाहुबलि के हृदय में यह विचार था कि वह भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुआ है।

इन दोनों प्रकरणों में इतना अन्तर क्यों?

१४. भाग २ पृ. ३० पर लिखा है कि जयकुमार और सुलोचना के विवाह के अवसर पर भरतेश्वर के पुत्र अर्ककीर्ति और जयकुमार का युद्ध नहीं हुआ। जब कि आदिपुराण पर्व ४४ में अर्ककीर्ति और जयकुमार के बीच घनघोर युद्ध का वर्णन है।

१५. भाग २, पृ. ५३ पर लिखा है कि भरत की माँ यशस्वती के नीहार नहीं होता था। जबकि तीर्थंकर की माता के नीहार होता है, ऐसा आगम में उल्लेख है, चक्रवर्ती की माँ को नीहार नहीं होता हो, ऐसा उचित नहीं।

१६. दीक्षा के समय भरतेश्वर की माँ को मुनिराजों ने पिच्छी और 'आत्मसार' नामक पुस्तक दिलवाई, ऐसा वर्णन भाग २, पृ. ५३ पर है। जबकि उस अवसर्पिणी के तृतीय काल में ग्रन्थ होने का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

१७. भाग २, पृ. ८३ पर सम्राट भरत द्वारा ७२ जिनमंदिरों का निर्माण एवं उनकी पंचकल्याणकपूजा का उल्लेख है। यह प्रकरण भी आगमसम्मत नहीं है। तृतीय एवं चतुर्थ काल में पंचकल्याणक होने का कोई प्रसंग प्राप्त नहीं होता और न ही ७२ जिनालयों का कोई प्रमाण मिलता है।

१८. भाग २, पृ. १४३ पर अणु और परमाणु की परिभाषा गलत दी गई है। सबसे सूक्ष्म पुद्गल को परमाणु कहा है और अनन्त परमाणुओं के मिलने से अणु बनता है ऐसा कहा है। यह परिभाषा आगमविरुद्ध है।

१९. भाग २ पृ. १५५ पर लिखा है कि कोई-कोई आत्मा पहले घातिया कर्मों का नाश करती है, बाद में अघातिया कर्मों का और कोई घातिया और अघातिया कर्मों को एक साथ नाश कर मुक्ति को जाती है। यह जिनोपदेश के विपरीत है।

२०. भाग २ पृ. १५१ पर प्रकरण दिया है कि कर्म, आत्मा व काल ये तीन पदार्थ अनादि हैं और उनके ही निमित्त से धर्म, अधर्म व आकाश कार्यकारी हुए। इसलिए वे आदि-वस्तु हैं, ऐसा भी कोई कहते हैं। यह प्रकरण भी बिल्कुल आगमविरुद्ध है। ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

२१. भाग २ पृ. १८१ पर कहा गया है कि भगवान् आदिनाथ ने १०० पुत्रों से कहा- 'अब अधिक उपदेश की जरूरत नहीं है। अब अपने शरीर के अलंकारों का त्याग कीजिए। राजवेष को छोड़कर तापसी वेष धारण कीजिए। बाद में दीक्षा होने के बाद भगवान् आदिनाथ ने 'आत्मसिद्धिरेवास्तु' इस प्रकार आशीर्वाद भी दिया। यह सारा वर्णन आगमसम्मत नहीं है। तीर्थंकर केवली इस प्रकार आशीर्वाद या दीक्षा नहीं देते हैं।

२२. भाग २ पृ. १७७ पर लिखा है कि जिनेन्द्र भगवान् के सिंहासन के चारों ओर हजारों केवली विराजमान थे। यह प्रकरण भी आगमसम्मत नहीं है।

२३. भाग २ पृ. २१४ पर तीर्थंकर प्रभु के अंतिम संस्कार के समय तीन कुण्डों को तीन शरीर की सूचना देने वाला बताया है। यह प्रकरण बिल्कुल गलत है।

२४. भाग २ पृ. २१५ पर भगवान् आदिनाथ का माघ वदी चतुर्दशी को निर्वाण होने से शिवरात्रि के प्रचलन का सम्बन्ध जोड़ा गया है। यह प्रकरण आगमसम्मत नहीं है।

२५. भाग २ पृ. २१७ पर अष्टापद की किस प्रकार रचना की गई यह प्रकरण लिखा है, जो किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी आगम से मेल नहीं खाता।

२६. भाग २ पृ. २२० पर भरतेश्वर की काली मूँछो का वर्णन है, जबकि आगम के अनुसार ६३ शलाका पुरुषों के दाढ़ी-मूँछ नहीं होते हैं।

२७. भाग २ पृ. २२० पर भरतेश्वर को महान् कामी और भोगी बताया है। लिखा है-'जिन स्त्रियों पर बुढ़ापे का असर हुआ, उनको मंदिर में ले जाकर आर्यिकाओं से व्रत दिलाते थे और उनके पास ही छोड़कर नवीन जवान स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। ऐसे भोगी राजा को रत्नाकर कवि ने भाग १ पृ. १६९ पर शुद्धोपयोगी कैसे कह दिया, बड़े आश्चर्य की बात है।

२८. भाग २ पृ. २२१ पर लिखा है कि भरतेश्वर की रोज नई-नई शादियाँ होती रहती थीं। लिखा है 'देश-देश से प्रतिदिन कन्याएँ आती रहती हैं। रोज भरतेश्वर का विवाह चल रहा है। इस प्रकार वे नित्य दूल्हा ही बने रहते हैं।'

२९. भाग २ पृ. २२० पर लिखा है कि भरतेश्वर अर्ककीर्ति कुमार को बुलाकर बोले-'इधर आओ, इस राज्य को तुम ले लो, मुझे दीक्षा के लिए भेजो।' अर्ककीर्ति के आनाकानी करने पर उन्होंने कहा- 'मैं घर में रह तो सकता हूँ, परन्तु आयुष्यकर्म तो बिल्कुल समीप आ पहुँचा है। आज ही घातिया कर्मों को नाश करूँगा और कल सूर्योदय होते ही मुक्ति प्राप्त करने का योग है। भरतेश्वर ने पहले दिन दीक्षा ली, शाम को केवलज्ञान हुआ और अगले दिन मोक्ष प्राप्त किया। यह प्रकरण बिल्कुल गलत है। आदिपुराण पर्व ४७ के अनुसार केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भगवान् भरत ने समस्त देशों में चिरकाल तक विहार किया। (श्लोक ३९७-३९८)।

३०. इस ग्रन्थ में गुरु हंसनाथ की बहुत चर्चा है। ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नाकर वर्णी के गुरु हंसनाथ नाम के जैनेतर कवि होंगे।

३१. भाग २ पृ. २३७ पर लिखा है- 'ज्ञानावरणीय की ४ प्रकृतियों का अंत पहले से हो चुका है, अब बचे हुए धूर्तकर्मों को भी मार गिराऊँगा। तदुपरान्त ध्यान खड्ग के बल से प्रचला व निद्रा का नाश किया, साथ में अन्तराय व दर्शनावरण की शेष प्रकृतियों को नष्ट किया। यह प्रकरण बिल्कुल आगमविरुद्ध है।'

३२. महाराजा भरत के निगोद से निकलकर, मनुष्य पर्याय धारणकर, मोक्ष प्राप्त करनेवाले ९२३ पुत्रों की इसमें कोई चर्चा नहीं है।

उपर्युक्त प्रसंगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रन्थ का रचयिता प्रामाणिक नहीं हैं, उसने राजा आदि को प्रसन्न करने के लिए अपने मन के अनुसार कल्पित कथा गढ़कर लोक में सम्मान प्राप्त कने के लिए इसे ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना १६वीं शताब्दी में हुई। उसके सामने भरतेश्वर के चरित्र का निरूपण करनेवाले आचार्य-प्रणीत शास्त्र उपलब्ध थे, परन्तु उसने उनका आधार न लेकर, लोक को रंजायमान करनेवाला यह अप्रामाणिक ग्रन्थ रच डाला। उसकी जैनधर्म में कोई आस्था नहीं थी और न उसको सैद्धान्तिक ज्ञान ही था। उसका जीवन कामवासना से पूरित रहा। भरतेश्वर को क्षायिक सम्यक्त्व था, अत: उसको सांसारिक भोगों में आसक्ति का अभाव था, परन्तु रत्नाकर कवि ने अपनी प्रवृत्ति एवं वासना के अनुसार भरतेश्वर को महान भोगी प्रदर्शित किया है। वास्तविकता यह है कि यह ग्रन्थ कथावस्तु तथा सिद्धान्त की दृष्टि से एकदम अप्रामाणिक है।

आवश्यकता है

श्रमण ज्ञान भारती छात्रावास जैन चौरासी सिद्ध क्षेत्र मथुरा के लिये योग्य एवं अनुभवी मैनेजर की, जो छात्रावास की व्यवस्था देख सके एवं छात्रों को जैनधर्म एवं दर्शन की शिक्षा प्रदान कर सके। वेतन एवं सुविधायें योग्यतानुसार।

सम्पर्क करें-

निरंजनलाल बैनाड़ा (अधिष्ठाता) मो. 09927091970

आनन्द प्रकाश जैन (मंत्री) मो. 09412722429

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अंश

तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन

पं० महेशकुमार जैन व्याख्याता

द्वितीय अध्याय

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १॥

तत्त्वार्थवृत्ति में इस सूत्र में आये 'च' शब्द का विशेष नहीं लिखा है।

सर्वार्थसिद्धि– औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति। तथा सति द्विः 'च' शब्दो न कर्त्तव्यो भवति। नैवं शक्यम्, अन्यगुणापेक्षया इति प्रतीयेत। वाक्ये पुनः सति 'च' शब्देन प्रकृतोभयानुकर्षः कृतो भवति। तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणमिति चेत्। न गौरवात्। मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। (यहाँ प्रथम 'च' शब्द की व्याख्या की गई है।)

अर्थ– शंका– यहाँ औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिकाः इस प्रकार द्वन्द्व समास करना चाहिये, ऐसा करने से सूत्र में दो 'च' शब्द नहीं रखने पड़ते।

समाधान– ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि सूत्र में यदि 'च' शब्द न रखकर द्वन्द्वसमास करते, तो मिश्र की प्रतीति अन्य गुण की अपेक्षा होती। किन्तु वाक्य में 'च' शब्द रहने पर उससे प्रकरण में आये हुए औपशमिक और क्षायिक भाव का अनुकर्षण हो जाता है।

शंका– तो फिर सूत्र में क्षायोपशमिक पद का ही ग्रहण करना चाहिये!

समाधान– नहीं, क्योंकि क्षायोपशमिक पद के ग्रहण करने में गौरव है, अतः इस दोष को दूर करने के लिए क्षायोपशमिक पद का ग्रहण न करके मिश्र पद रखा है।

राजवार्तिक– द्वन्द्वनिर्देशो युक्त इति चेत् न, उभयधर्मव्यतिरेकेणान्यभावप्रसङ्गात्। स्यान्मतम्-द्वन्द्व-निर्देशोऽत्र युक्तः – औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिकाः इति। तत्रायमप्यर्थो द्विश्चशब्दो न कर्त्तव्यो भवतीति, तन्न किं कारणम्? उभयधर्मव्यतिरेकेणान्यभावप्रसंगात्। उभाभ्यां व्यतिरेकेणान्यो भावः प्राप्नोति, 'च' शब्दे पुनः सति पूर्वोक्तानुकर्षणार्थो युक्तो भवति। (२/१/१९)।

अर्थ– इस सूत्र में द्वन्द्व समास करना चाहिये? **उत्तर–** ऐसा नहीं है, क्योंकि उभयधर्म के व्यतिरेक से अन्य भाव का प्रसंग आता है। शंकाकार का कहना है कि 'औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिकाः' इस प्रकार सूत्र में द्वन्द्व समास का निर्देश करना चाहिये, जिससे इस सूत्र के अर्थ में दो बार 'च' शब्द नहीं करना पड़ता? **उत्तर–** ऐसा नहीं है क्योंकि द्वन्द्वसमास करने से मिश्र शब्द से औपशमिक और क्षायिक से भिन्न तीसरे भी भाव के ग्रहण का प्रसंग आयेगा। इसलिए द्वन्द्व समास नहीं किया गया है। क्योंकि पुनः 'च' शब्द के ग्रहण करने पर पूर्वोक्त दोषों का निराकरण हो जाता है।

श्लोकवार्तिक–

न चैषां द्वन्द्वनिर्देशः सर्वेषां सूरिणा कृतः।
क्षायोपशमिकस्यैव मिश्रस्य प्रतिपत्तये॥ १२॥
नानर्थकश्च शब्दौ तौ मध्ये सूत्रस्य लक्ष्यते।
नाप्यंते व्यादिसंयोग जन्म भावोपसंग्रहात्॥ १३॥
क्षायोपशमिकं चांते नोक्तं मध्येत्र युज्यते।
ग्रन्थस्य गौरवाभावादन्यथा तत्प्रसंगतः॥ १४॥

अर्थ– शंका– यहाँ प्रथम 'च' शब्द न देकर आचार्य उमास्वामी को द्वन्द्वसमास का निर्देश करना चाहिये, जिससे "औपशमिकक्षायिकौदयिकपारिणामिकाः" इस प्रकार सूत्र हो जाता। **समाधान–** सूत्र में मिश्र पद का ग्रहण क्षायोपशमिक के ज्ञान के लिए ही है, जिससे औपशमिक और क्षायिक इन दोनों का ही मिश्र यह क्षायोपशमिक भाव है। अतः 'च' शब्द अनर्थक नहीं है। अन्त में 'च' शब्द २ आदि के संयोग से उत्पन्न भाव का संग्रह करने के लिए है। प्रथम 'च' शब्द को नहीं कहकर क्षायोपशमिक पद के कहने से ग्रन्थ का गौरव हो जाता (अर्थात् मिश्रश्च इन ३ वर्णों के स्थान पर क्षायोपशमिक ये ६ सस्वर वर्ण कहने पड़ते) अतः ग्रन्थ के गौरव दोष का अभाव हो जाने से औपशमिक और क्षायिक के बाद तथा इस सूत्र के मध्य में क्षायोपशमिक शब्द कहना युक्त नहीं था।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति– 'च' शब्देन षष्ठः सान्निपातिकः समुच्चियते। स च पूर्वोत्तरभावसंयोगादिद्वित्रिचतुः-पंचसंयोगजो ज्ञेयः। (यहाँ द्वितीय 'च' शब्द की व्याख्या की गई है।)

अर्थ– सूत्र में आये 'च' शब्द से छठे सान्निपातिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव का ग्रहण होता है। वह सान्निपातिक भाव इन औपशमिक आदि भावों को पूर्वोत्तर रूप से संयोग करने पर बनता है। इनके संयोग से द्विसंयोगी, त्रिसंगोयी, चतु:संयोगी और पंचसंयोगी ऐसे भेद होते हैं। भावार्थ- सूत्र में आया प्रथम 'च' औपशमिक भाव और क्षायिक भाव का मिश्र पद ग्रहण करने के लिए है, अर्थात् क्षायोपशमिक भाव का वाचक है। एवं द्वितीय 'च' छठे सान्निपातिक भाव का ग्रहण करने के लिए है, जिससे द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी, चतु:संयोगी और पंचसंयोगी भावों का ग्रहण हो जाता है। जैसे- **द्विसंयोगी**-औदयिक-औपशमिक जैसे- मनुष्य ओर उपशान्तक्रोध। **त्रिसंयोगी**-औदयिक-औपशमिक-क्षायिक जैसे-मनुष्य, उपशान्तमोह और क्षायिक सम्यग्दृष्टि। **चतु:संयोगी**-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक, जैसे-उपशान्तलोभ, क्षायिक-सम्यग्दृष्टि, पंचेन्द्रिय और जीव। **पंचसंयोगी**-औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक, जैसे-मनुष्य, उपशान्तमोह, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, पंचेन्द्रिय और जीव।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च॥ ४॥

सर्वार्थसिद्धि- 'च' शब्द: सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थ:।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द सम्यक्त्व और चारित्र के ग्रहण करने के लिए आया है।

राजवार्तिक एवं श्लोकवार्तिक- 'च' शब्देन सम्यक्त्व-चारित्रे समुच्चीयेते। (४/०)

अर्थ- 'च' शब्द से सम्यक्त्व और चारित्र का समुच्चय हो जाता है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति-'च'शब्देन सम्यक्त्वचारित्रयो: परिग्रह:।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द से क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र भावों का ग्रहण होता है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारात् सम्यक्त्चारित्रे च द्वे।

अर्थ- 'च' शब्द से सम्यक्त्व और चारित्र का ग्रहण हो जाता है।

भावार्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से सभी आचार्यो ने क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र का ग्रहण किया है, जिससे क्षायिक भाव के ९ भेद हो जाते हैं।

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदा: सम्यक्त्व-चारित्रसंयमासंयमाश्च॥ ५॥

सर्वार्थसिद्धि, श्लोकवार्तिक एवं सुखबोधतत्त्वार्थ-वृत्ति में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

राजवार्तिक- संज्ञित्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोगोपसंख्यानमिति चेत्, न, ज्ञानसम्यक्त्वलब्धिग्रहणे गृहीतत्वात्॥ ९॥ स्यादेतत्- संज्ञित्वसम्यङ्मिथ्यात्व-योगोपसंख्यानं कर्तव्यम्, तेऽपि हि क्षायोपशमिका इति, तन्न, किं कारणम्? ज्ञानसम्यक्त्वलब्धिग्रहणेन गृहीतत्वात्। संज्ञित्वं हि मतिज्ञानेन गृहीतं सम्यङ्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वग्रहणेन, नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षत्वात्, उभयात्मकस्य एकात्म-परिग्रहाच्च उदकव्यतिमिश्रक्षीरव्यपदेशवत्। योगश्च वीर्यलब्धिग्रहणेन गृहीत इति। अथवा 'च' शब्देन समुच्चयो वेदितव्य:। (२/५/९)।

अर्थ- शंका- संज्ञित्व, सम्यग्मिथ्यात्व और योग भी क्षायोशमिक हैं। उनका भी ग्रहण करना चाहिये? **समाधान**- नहीं। **शंका**- किस कारण से? **समाधान**- ज्ञान, सम्यक्त्व और लब्धि के ग्रहण से उन तीनों का गहण हो जाता है। अर्थात् क्षायोपशमिक संज्ञित्वभाव नोइन्द्रियावरणकर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने के कारण मतिज्ञान में अन्तर्भूत हो जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व यद्यपि दूध-पानी की तरह उभयात्मक है, फिर भी सम्यक्पना उसमें विद्यमान होने से सम्यक्त्व में अन्तर्भूत हो जाता है। वीर्यलब्धि के ग्रहण से योग का ग्रहण हो जाता है। अथवा 'च' शब्द से इन भावों का संग्रह हो जाता है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारात् संज्ञित्वं सम्यग्मिथ्यात्वं च मिश्रौ भावौ ज्ञातव्यौ।

अर्थ- सूत्र में आये हुए च शब्द से संज्ञित्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों को भी मिश्र (क्षायोपशमिक) भाव जानना चाहिये।

भावार्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञीपना एवं योग ये तीनों भी क्षायोपशमिक भाव होते हैं, इस प्रकार जानना चाहिये।

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७॥

सर्वार्थसिद्धि- ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावा: पारिणामिका: सन्ति। तेषामेव ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। कृतमेव। कथम्? 'च' शब्देन समुच्चितत्वात्। यद्येवं त्रय इति संख्या विरुध्यते। न विरुध्यते, असाधारणा: जीवस्य भावा: पारिणामिकास्त्रय एव। अस्तित्वादय: पुनर्जीवाजीवविषयत्वात् साधारण इति। 'च' शब्देन पृथग्गृह्यन्ते।

अर्थ- शंका- अस्तित्व, नित्यत्व और प्रदेशत्व आदि भी भाव हैं, उनका इस सूत्र में ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान- अलग से उनके ग्रहण करने का कोई काम नहीं, क्योंकि उनका ग्रहण किया है। **शंका**- कैसे? **समाधान**- क्योंकि सूत्र में आये हुए 'च' शब्द से उनका समुच्चय हो जाता है। **शंका**- यदि ऐसा है, तो तीन संख्या विरोध को प्राप्त होती है, क्योंकि इस प्रकार तीन से अधिक पारिणामिकभाव हो जाते हैं। **समाधान**- तब भी तीन संख्या विरोध को प्राप्त नहीं होती, क्योंकि जीव के असाधारण भाव तीन ही हैं। अस्तित्व आदि तो जीव और अजीव दोनों के साधारण हैं। इसलिए उनका 'च' शब्द के द्वारा अलग से ग्रहण किया है।

राजवार्तिक- 'च' शब्द: किमर्थ:? अस्तित्वान्यत्व-कर्तत्वभोक्तृत्व-पर्यायवत्वाऽसर्वगतत्वाऽनादि सन्ततिबन्धन-बद्धत्वप्रदेशवत्वारूपत्वनित्यत्वादिसमुच्चयार्थश्च शब्द:। अस्तित्वादयोऽपि पारिणामिका भावा: सन्ति। (७/१२)।

अर्थ- **शंका**- सूत्र में 'च' शब्द किसलिए है? **समाधान**- अस्तित्व, अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, पर्यायवत्व, असर्वगतत्व, अनादिसन्ततिबन्धनबद्धत्व, प्रदेशवत्व, अरूपत्व, नित्यत्व आदि के समुच्चय के लिए सूत्र में 'च' शब्द का ग्रहण किया गया है। क्योंकि अस्तित्त्व आदि भाव भी परिणामिक हैं।

श्लोकवार्तिक-'च' शब्दसमुच्चितास्तु साधारणा: असाधारणाश्चास्तित्वान्यत्वान्यत्वकर्तृत्व-हरत्व-पर्यायवत्त्वासवर्गगतत्वानादिसंततिबंधनबद्धत्वप्रदेशवत्वारूपत्व-नित्यत्वादय:। तर्ह्यादिग्रहणमत्र न्याय्यमिति चेन्न, त्रिविध-पारिणामिकभावप्रतिज्ञाहानिप्रसंगात्। समुच्चयार्थेपि 'च' शब्दे सति तुल्यो दोष इति चेन्न, प्रधानापेक्षत्वात्त्रित्वप्रतिज्ञाया: समुच्चीयमानास्तु 'च' शब्देनाप्रधानभूता एवास्तित्वादय इति न दोष:।

अर्थ- 'च' शब्द में साधारण और असाधारण भाव समुच्चित हैं। जैसे- अस्तित्त्व, अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, पर्यायवत्व, असर्वगतत्त्व, अनादिसंततिबंधनबद्धत्व, प्रदेशवत्त्व, अरूपत्व, नित्यत्व आदि। तो फिर यहाँ 'आदि' शब्द का ग्रहण करना चाहिये? नहीं, ऐसा करने से ली गई तीन प्रकार के भावों की प्रतिज्ञा नष्ट होगी। **शंका**- 'च' शब्द को समुच्चयार्थक ग्रहण करने पर भी वही दोष होगा? **समाधान**- नहीं, तीन की प्रतिज्ञा तो प्रधानता की अपेक्षा से है, किन्तु अप्राप्तप्रतिज्ञावाले समुच्चीयमान अस्तित्वादि को अप्रधान की अपेक्षा से 'च' शब्द से ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दादद्रव्यान्तरसाधारणा: सत्वद्रव्यत्वासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादयाऽप्राधान्येनोक्ता गृह्यन्ते।

अर्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से अन्य द्रव्यों में पाये जानेवाले साधारणरूप सत्व, द्रव्यत्व, अंसख्येय-प्रदेशत्व, अमूर्तत्व आदि भाव अप्रधानता से ग्रहण किये हैं।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारादस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं नित्यप्रदेशत्वममूर्तत्वं चेतनमचेतनत्वं च। एतेऽपि दशभावा: पारिणामिका अन्यद्रव्यसाधारणा वेदितव्या:।

अर्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से अस्तित्त्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, मूर्तत्व अमूर्ततत्व, चेतनत्व और अचेतनत्व भावों का ग्रहण किया गया है। अर्थात् ये दस भी पारिणामिक भाव हैं। ये भाव अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं (इसलिये जीव के असाधारण भाव न होने से सूत्र में इन भावों को नहीं कहा है।)

भावार्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशवत्व आदि सभी द्रव्यों में पाये जानेवाले साधारण भावों का ग्रहण किया गया है। ये भी पारिणामिक भाव हैं।

संसारिणो मुक्ताश्च॥ १०॥

सर्वार्थसिद्धि एवं सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं है।

राजवार्तिक- समुच्चयाभिव्यक्त्यर्थं 'च' शब्दोऽनर्थक इति चेत्, न, उपयोगस्य गुणभावप्रदर्शनत्वात्॥ ४॥ स्यान्मतम्- 'च' शब्दोऽनर्थक:। कुत:? अर्थभेदात् समुच्चयसिद्धे:। भिन्ना हि संसारिणो मुक्ताश्च ततो विशेषणविशेष्यत्वानुपपत्ते: समुच्चय: सिद्ध: यथा ''पृथिव्यापस्तेजोवायु:'' इति, तन्न किं कारणं? उपयोगस्य गुणभावप्रदर्शनार्थत्वात्। नायं 'च' शब्द: समुच्यते, क्व तर्हि? अन्वाचये। तत्र ह्येक: प्रधानभूत: इतरो गुणभूत: यथा 'भैक्षं चर देवदत्तं चानय।' इति प्रधानशिष्टं भैक्षचरणं देवदत्तानयनमप्रधानशिष्टम्। तथा संसारिण: प्राधान्येनोपयोगिनो मुक्त्वा गुणभावेनेत्येतस्य प्रदर्शनार्थ:। कथं संसारिषु मुख्य उपयोग: कथं वा मुक्तेषु गौण:?। (२/१०/४)

परिणामान्तरसंक्रमाभावाद् ध्यानवद्॥ ५॥ यथा एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमिति छद्मस्थे ध्यानशब्दार्थो मुख्यश्चिन्ताविक्षेपवत: तन्निरोधोपपत्ते:, तदभावात् केवलि-न्युपचरित: फलदर्शनात्, तथा उपयोगशब्दार्थोऽपि संसारिषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य: परिणामान्तरसंक्रमात्, मुक्तेषु तदभावात् गौण: कल्प्यते उपलब्धिसामान्यात्। (२/१०/५)

अर्थ- समुच्चय अर्थ होने से 'च' शब्द को प्रयोग करना व्यर्थ है, ऐसा भी कहना उचित नहीं है, क्योंकि 'च' शब्द उपयोग के गुणभाव का प्रदर्शन कराने के लिए दिया गया है॥ ४॥ अर्थ भिन्न-भिन्न होने से 'च शब्द के बिना ही समुच्चय का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि संसारी भिन्न है और मुक्त भिन्न है- यथा पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु आदि का संसारी कहा है, इसलिए विशेषण-विशेष्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, ऐसा भी कहना उचित नहीं है, क्योंकि सूत्र में 'च' शब्द समुच्चयार्थक नहीं है, किन्तु अन्वाचय अर्थ में है। संसारी जीवों में उपयोंग की मुख्यता और मुक्त जीवों में उपयोग की गौणता बताने के लिए 'च' शब्द दिया है, जैसे- देवदत्त को लाओ भिक्षा कराओ। इसमें भिक्षा कराओ यह पद प्रधान है ओर देवदत्त को लाओ यह गौण है। **प्रश्न**- संसारी जीवों में उपयोग की मुख्यता और मुक्त जीवों में गौणता क्यों है?

उत्तर- परिणामान्तर के संक्रमण का अभाव होने से ध्यान के समान, जैसे- एकाग्रचिन्तानिरोधरूप ध्यान छद्मस्थों के मुख्य है, क्योंकि चित्त के विक्षेपवाले छद्मस्थों के चिन्तानिरोध की उत्पत्ति होती है, परन्तु केवली भगवान् के मानसिक विक्षेप नहीं है, सिर्फ ध्यान का फल कर्म- ध्वंस देखकर उनमें उपचार से ध्यान कहा जाता है, उसी प्रकार संसारियों में उपयोग बदलता रहता है, इसलिए मुख्य है और मुक्तात्माओं में सतत एकसी धारा रहने के कारण गौण है।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दोऽनर्थक इति चेन्न इष्टविशेषसमुच्चयार्थत्वात्। नो- संसारिण: सयोगकेवलिन: संसारिणो संसार्य संसारित्वव्यपेतास्त्वयोगकेवलिनोऽभीष्टास्ते येन समुच्चीयन्ते।

अर्थ- **शंका**- सूत्र में आया 'च' शब्द अनर्थक है! **सामधान**- नहीं, इष्टभेद का समुच्चय करने के लिए 'च' शब्द दिया गया है, जिससे सयोगकेवली नो-संसारी जीव हैं, शेष सभी संसारी जीव हैं, किन्तु अयोगकेवली असंसारी जीव हैं, इस अभीष्ट अर्थ का समुच्चय हो जाता है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकार: परस्परसमुच्चये वर्तते। संसारिणश्च जीवा भवन्ति, मुक्ताश्च जीवा भवन्तीति समुच्चस्यार्थ:।

अर्थ- चकार शब्द परस्पर समुच्चय के लिए है। संसारी जीव होते हैं और सिद्ध जीव होते हैं। दोनों के समुच्चय के लिए 'च' श्ब्द दिया है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी- मुक्त भी कई प्रकार के होते हैं जैसे- संसारमुक्त, जीवनमुक्त आदि एवं संसारी भी कई प्रकार के होते हैं जैसे-त्रस, स्थावर आदि। इन सबके समुच्चय के लिए सूत्र में 'च' पद दिया है।

भावार्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से संसारी जीवों के तीन भेद किए हैं- १. बारहवें गुणस्थान तक के संसारी जीव २. तेरहवें गुणस्थान वाले नोसंसारी जीव ३. चौदहवें गुणस्थानवर्ती असंसारी जीव हैं। उपयोग की मुख्यता और गौणता के लिए भी 'च' शब्द प्रयुक्त है, जिससे संसारी जीवों में उपयोग की मुख्यता है और मुक्त जीवों में उपयोग की गौणता है, यह बात फलित हो जाती है। संसारी भी जीव होते हैं तथा मुक्त भी जीव होते हैं तथा ये कई प्रकार के होते हैं। इन सबके समुच्चय के लिए 'च' शब्द दिया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जैन-बौद्धदर्शन विभाग में संगोष्ठी सम्पन्न

संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय शास्त्रसंगोष्ठी के अन्तर्गत जैन-बौद्ध दर्शन विभाग द्वारा 'जैन-बौद्ध शास्त्रेषु तत्त्वविमर्श:' विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन दिनांक १८.१.०९ को पूर्व कलासंकाय-प्रमुख प्रो० सुदर्शनलाल जैन की अध्यक्षता तथा चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो० धनराज शर्मा के मुख्यातिथ्य में किया गया।

अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो० सुदर्शनलाल जैन ने विभिन्न भारतीय दर्शनों में तात्त्विक व्यवस्था का वर्णन करत हुए जैन-बौद्ध की तत्त्वव्यवस्था की मौलिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला तथा अनेकान्तात्मक पद्धति से वस्तु विश्लेषण पर बल दिया।

सत्र की सम्पूर्ति में विभागाध्यक्ष प्रो० कमलेश-कुमार जैन ने अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का कुशल संयोजन विभाग के शोधच्छात्र श्री पंकजकुमार जैन ने किया।

डॉ० कमलेशकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णमोकार मन्त्र का शुद्ध उच्चारण एवं जाप्यविधि

पं० आशीष जैन शास्त्री

णमोकारमन्त्र के वर्तमान में तीन प्रकार के उच्चारण देखने में आते हैं। उनमें अन्य पद तो समान हैं, केवल प्रथम पद में अंतर है।

प्रथम पद के तीन उच्चारण-

णमो अरिहंताणं,

णमो अरहंताणं,

णमो अरुहंताणं।

अर्थ की दृष्टि से देखा जाय तो तीनों ही उच्चारण उचित हैं। **णमो अरिहंताणं** का अर्थ है- घातिया कर्म-रूपी शत्रुओं को नाश करनेवाले को नमस्कार हो। **णमो अरहंताणं** का अर्थ होता है- इन्द्रादि द्वारा पूज्य अर्थात् पाँच महाकल्याणकों से पूजित को नमस्कार हो। **णमो अरुहंताणं** का अर्थ होता है- कर्म नष्ट हो जाने से पुनर्जन्म से रहित को नमस्कार हो। यद्यपि ये तीनों ही हमारे अर्थ की सिद्धि करनेवाले हैं, परन्तु इनमें मूल पाठ तो **णमो अरिहंताणं** ही है, क्योंकि इस महामंत्र के रचनाकार आचार्य पुष्पदंत महाराज (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी) हैं। और उन्होंने श्री षट्खण्डागम के मंगलाचरण के रूप में इसकी रचना की थी। वहाँ इसका लेखन **णमो अरिहंताणं** रूप ही है, अतः णमोकार महामन्त्र के प्रथम पद का मूल उच्चारण **णमो अरिहंताणं** ही मानना चाहिए।

इस संबंध में मुझे पू० आ० विद्यासागर जी महाराज द्वारा कहा गया यह संस्मरण भी याद आता है- 'मेरे दीक्षागुरु आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज को जब कभी तीन बार णमोकारमंत्र बोलना होता था, तो वे सर्वप्रथम 'णमो अरिहंताणं'--- उसके बाद 'णमो अरहंताणं' --- तथा अन्त में 'णमो अरुहंताणं' बोलते थे।' इसका भी यही तात्पर्य होता है कि समान अर्थ होने से तीनों उच्चारण उचित हैं, पर मूल तो 'णमो अरिहंताणं' ही है।

इस मंत्र के तीसरे पद के भी दो उच्चारण दृष्टिगोचर होते हैं- **णमो आइरियाणं** तथा **णमो आयरियाणं**। इनमें भी यद्यपि अर्थ की अपेक्षा अंतर नहीं है, परन्तु श्री षट्खण्डागम के अनुसार मूल उच्चारण **णमो आइरियाणं** है।

इसका एक कारण यह भी है कि णमोकारमंत्र में ३० व्यंजन होते हैं। यदि हम 'आयरियाणं' बोलते हैं तो ३१ व्यंजन हो जाते हैं और 'णमो आइरियाणं' बोलते हैं तो ३० व्यंजन ही होते हैं, अतः 'णमो आइरियाणं' ही शुद्ध है।

इस प्रकार मूल उच्चारण यह है-

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

आजकल बहुत से जैनी भाइयों के घर में तथा तीर्थक्षेत्र एवं मंदिरों में, णमोकारमंत्र के कैसेट बजते हुये सुनने में आते हैं। ये श्वेताम्बरों द्वारा बनाये हुये हैं। इनमें **णमो** के स्थान पर **नमो** तथा **आइरियाणं** के स्थान पर **आयरियाणं** सुनने में आ रहा है। यह उचित नहीं है। 'ण' का 'न' रूप से परिवर्तन करने से शब्दों की शक्ति घट जाती है। इससे मंत्रशास्त्र के रूप और मण्डल में विकृति हो जाती है। फल की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाती। **णमो** के उच्चारण, मनन तथा चिन्तन में आत्मा की अधिक शक्ति लगने से, फल अतिशीघ्र मिलता है तथा प्राणवायु एवं विद्युत् का अत्यधिक संचार होता है। अपने शरीर, स्वास्थ्य तथा अन्य पदार्थ पर भी 'णमो' शब्द अधिक फलदायी है। अतः शुद्ध मंत्र का भावसहित उच्चारण सर्वश्रेष्ठ फल का देनेवाला तथा महापुण्यबंध का कारण है।

जप-विधि

श्री धवलाग्रंथ में इस मंत्र के जप की मुख्यतया तीन विधियाँ बताई गई हैं-

1. पूर्वानुपूर्वी-

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

2. पश्चातानुपूर्वी-

णमो लोए सव्व साहूणं, णमो उवज्झायाणं।
णमो आइरियाणं, णमोसिद्धाणं णमो अरिहंताणं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. याथातथ्यानुपूर्वी-

णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं।

णमो आइरियाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

अथवा

णमो आइरियाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धांण, णमो उवज्झायाणं॥

अथवा इसी विधि से किसी भी पद को आगे-पीछे लेकर इस मंत्र का जाप किया जा सकता है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि न तो कोई पद दोबारा आये और न कोई पद छूटे। लड्डू की तरह इस मंत्र का कैसा भी जाप सुख प्रदान करनेवाला है।

जाप भी तीन प्रकार से किया जाता है-

१. जब जाप करते समय न तो उंगली-अँगूठा आदि का प्रयोग किया जाय और न जिह्वाचालन या उच्चारण हो। मात्र मन में जाप हो। यह सर्वश्रेष्ठ फलदायी है।

२. जब मंत्र का उच्चारण तो न हो, पर अँगुली या ओंठ, जिह्वा आदि क्रियाशील हों। यह मध्यम फलदायी है।

३. जब उच्चारणसहित मंत्रजाप किया जाय। यह जघन्य फलदायी है।

मंत्रजाप के तीन अन्य प्रकार और भी हैं-

१. **कमल जाप्य**- हृदय स्थान पर १२ दलवाले कमल की रचनाकर उसके आधार से जाप करना।

२. **हस्तांगुली जाप्य**- हाथ की अंगुलियों के आधार से जाप करना।

३. **मालाजाप्य**- माला के आधार से जाप करना।

उपर्युक्त तीनों प्रकारों में कमलजाप्य को उत्कृष्ट कहा जाता है।

वर्तमान में जाप देने का प्रचलन तो बहुत से धर्मप्रेमी भाइयों-बहिनों में है, परन्तु सबका एक ही प्रश्न रहता है कि मन तो लगता नहीं, फिर जाप देने से क्या लाभ है? उन सबसे मेरा नम्र निवेदन है कि **यदि उचित स्थान पर, उचित काल में जाप दी जायेगी, तो अवश्य मन लगेगा। साथ ही मन लगाने के लिये, ऊपर कही गयी पूर्वानुपूर्वी आदि रूप से जाप देंगे, तो अवश्य ही मन लगेगा।** आशा है पाठकगण, शुद्ध मंत्र का, मन लगाते हुये जाप देकर मंत्र का उत्कृष्ट फल प्राप्त करेंगे।

यही इस लेख का आशय है।

श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर
(जयपुर, राज.)

म.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा डॉ० सागरमल जी जैन सम्मानित

दिनांक १९ फरवरी २००९ गुरुवार को भारतीय साहित्य, कला एवं संस्कृति को समर्पित शाजापुर नगर की 'पहचान' संस्था द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त जैन विद्वान् डॉ० सागरमल जी जैन के 'अमृत महोत्सव' समारोह का आयोजन किया गया। समारोह प.पू. पुष्पा जी म.सा., प.पू. ज्योत्सना जी म.सा. प.पू. प्रतिभा जी म.सा. आदि ठाणा-७ की निश्रा एवं म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री शिवराजसिंह चौहान के मुख्य आतिथ्य तथा श्री पारस जी जैन खाद्य आपूर्ति मंत्री, म.प्र. शासन की अध्यक्षता में स्थानीय प्रहलाद जीन परिसर में उपस्थित विशाल जनसमुदाय के बीच सम्पन्न हुआ।

मुख्यमंत्री व डॉ० सागरमलजी के बीच गुरु-शिष्य का नाता है। इसी बात से प्रेरित होकर 'गुरुगोविंद दोनों खड़े, काके लागू पाँय, बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय' के दोहे से अपनी बात आरंभ करते हुए मुख्यमंत्री श्री चौहान ने अपने मार्गदर्शक प्रेरणास्रोत डॉ० सागरमल जी जैन के इस अमृतमहोत्सव समारोह में अपने गुरु का गुणानुवाद करते हुए जब गुरु-शिष्य के मधुर संबंधी व इस रिश्ते की पवित्रता पर मुखरित होकर बोले, तो उपस्थित जन समुदाय स्वतः ही तालियाँ बजाकर इस प्रसंग पर अपनी आत्मीय उपस्थिति का प्रमाण देता दिखाई दिया। उन्होंने कहा-संसार में माता-पिता के बाद वंदनीय स्थान गुरु का होता है। मुझे गर्व है कि इस गहराई को मैं स्वयं के जीवन में भी महसूस करता हूँ। मैं अपने वंदनीय गुरु डॉ० जैन सा० को विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे द्वारा भी इस जीवन संग्राम में किए जा रहे प्रत्येक कार्य से आप सदैव गौरवान्वित होते रहेंगे।

इस अवसर पर उपस्थित साध्वी-मण्डल ने डॉ० सागरमल जी जैन को 'ज्ञान महोदधि' की उपाधि से अलंकृत किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर होने के मायने

कैलाश मड़बैया

महावीर की प्रासंगिकता या महावीर का महत्त्व जैसे शीर्षकों से अब सामान्यतः अरुचि होने लगी है, क्योंकि प्रायः इस तरह के शब्द हर सामान्य पुरुष / महापुरुष के लिये, उनके स्मरण किये जाते समय प्रयोग किये जाते हैं। कभी-कभी तो अपूज्यों के लिये भी बड़े-बड़े ऐसे ही शब्द विशेषण बतौर लगा दिये जाते हैं, इसीलिये कहा जाता है कि इन दिनों शब्द अपने मूल अर्थ खोने लगे हैं। वे अपना सटीक प्रभाव नहीं छोड़ पाते हैं, चलताउ हो गये हैं। उदाहरण के लिये मीडिया ने इन दिनों, राजनीतिक गुण्डों के लिये एक आध्यात्मिक और पारम्परिक प्रचलित शब्द 'बाहुबलि' का दुरुपयोग करना शुरू कर दिया है। एक युग से बाहुबलि शब्द, प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ प्रभु के कनिष्ठ और महान् आत्मसाधक पुत्र बाहुबलि के लिये ही प्रयोग किया जाता रहा है, जिन की विश्वप्रसिद्ध विशालतम सुन्दर मूर्ति श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में मानवाकर्षण का एक ऐतिहासिक अद्वितीय कलाबिम्ब है। इन्हीं बाहुबलि के बड़े भाई महाराज भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। अब मीडिया के लोगों को कौन समझाये कि जिन गुण्डों को आप बाहुबलि कह रहे हैं, उनमें एक भी गुण तो दूर वे उन भगवान् बाहुबलिस्वामी के चरणरज बरावर भी नहीं हैं, न ही उनमें शाब्दिक ही अर्थ शेष है। यदि यह शाब्दिक दुरुपयोग जारी रहा तो कोई आश्चर्य नहीं कि भगवान् बाहुबलि में ही अतीत को नहीं समझने वाली नई पीढ़ी, आज के राजनैतिक गुण्डों की छवि देखने लगे। क्योंकि ऋणात्मक प्रभाव ही मनोवैज्ञानिकरूप से जल्दी पड़ता है। एक और जैन प्रचलित शब्द है 'सल्लेखना', जिसका आध्यात्मिक अर्थ समझे बिना लोग इसे आत्महत्या मनवाने पर उतारू हैं, क्योंकि ये लोग तो सामान्य मौत या कुत्ते की मौत भर जानते हैं। दूर क्यों जाते हैं, मीडिया में क्रिकेट मैचों को युद्ध का रूप देने में शब्दों के दुरुपयोग पर कोई कसर नहीं छोड़ी जाती है। कमेण्ट्री में कहा जाता है... कुचल दो पाकिस्तान को..., लूट लो श्रीलंका को,... रौंद डालो आस्ट्रेलिया को, बचने न पायें अफ्रीकन... इत्यादि। क्या कोई टीम दुश्मन देश होती है या क्रिकेट खेल नहीं,युद्ध होता है? आखिर बाजारवाद कहाँ ले जायेगा हमें...? मीडियाकर्मी साहित्य की गहराई में जाना ही नहीं चाहते? विज्ञापनों में शब्दों के दुरुपयोग और द्विअर्थी संवादों ने साहित्य, समाज और संस्कृति की ऐसी-तैसी कर रखी है। इसलिये महावीर जैसे युगप्रवर्तक तीर्थंकर के लिये शब्दों का उपयोग करने में सतर्कता आवश्यक है, क्योंकि महावीर स्वयं में ही बाह्य शत्रुओं को जीतकर नहीं, अन्तः के दुश्मनों को जीतकर आत्मसाधना से महान् बनने का नाम है। महावीर स्वामी ने लगभग २६०० वर्ष पूर्व स्व में उतरने के जो वैज्ञानिक प्रयोग किये थे, उन्हें विज्ञान भले आज सिद्ध न कर पाया हो, पर वह क्रान्तिकारी महावीर ही थे, जिन्होंने मानव/पशु बलि के पाखण्डवाले उस पतित युग में कहा था कि मुक्ति/मोक्ष के लिये किसी ईश्वर की भक्ति की आवश्यकता नहीं हैं, वरन् स्वयं को पर्त दर पर्त उघाड़ कर आत्मस्थ होने की आवश्यकता है। पर तब तो इसको गहराई से समझे बिना जैनधर्म पर ही नास्तिक होने का आरोप लगा दिया गया था। वह तो महावीर को तब समझ गया जब आइन्सटीन जैसे वैज्ञानिक ने सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिया। इसलिये आइये, तीर्थंकर महावीर ने जिन प्रमुख जैनसिद्धान्तों को अनावृत किया था, उन्हें संक्षेप में व्याख्यायित करने की विनम्र कोशिश करें।

अनेकान्त दर्शन- महावीर के काल अर्थात् ईसा से ५९९ ई० पूर्व तक लोगों में अरस्तू का ही यह सिद्धान्त प्रमुखता प्रचलित था कि क, क है और ख, ख है। क, ख नहीं हो सकता और ख, क नहीं। पर महावीर ने समझाया कि एक व्यक्ति पुत्र के लिये पिता, पत्नी के लिये पति, पिता के लिये पुत्र बहिन के लिये भाई अर्थात् अलग-अलग रूप हो सकता है। इसलिये वस्तु का स्वरूप सापेक्ष होता है, ठीक पाँच अंधों के अलग-अलग रूप में हाथी को देखने के अनुभवों की तरह। पर भिन्न-भिन्न अनुभव होने के बावजूद हाथी तो सभी को देखा हुआ समग्र अनुभव ही होता है न कि किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक का। एक व्यक्ति की दृष्टि तो एक समय में एक कोण तक ही जा सकती है, एक साथ सभी कोंणों तक नहीं, इसलिये एक व्यक्ति की दृष्टि एकांगी होगी, सम्पूर्ण सत्य तो सभी कोंणों को मिलाकर ही दिखायी देगा। इसलिये आप जो कह रहे हैँ, वही सही नहीं है, वरन् दूसरा जो कहता है, वह भी सत्य है। सत्य एकांगी नहीं विराट होता है, समग्र होता है। संक्षेप में यही महावीर की अनेकान्त दृष्टि है। 'ही' एकांगी है, अत: सब कुछ नहीं, 'भी' को सम्मान दीजिये। क्योंकि अन्य का देखा भी सत्य है। दूसरों की भी सुनिये और उसे महत्त्व दीजिये। अनेकान्त का अर्थ है- जीवन में सभी देखे, अनदेखे पहलुओं की एक साथ स्वीकृति।

आइंस्टीन के पहले, परमाणु को कण यानी बिन्दु माना जाता था पर आइंस्टीन ने कहा कि यह बिन्दु भी है और तरंग भी। इसके लिये महावीर ने एक शब्द दिया 'स्यात्'। इसका अर्थ शायद नहीं है। 'स्यात्' शब्द किसी शंका का द्योतक नहीं हैं। यह किसी की संतुष्टि के लिये अपने को दबाना भी नहीं है। वरन् जो मैं नहीं देख सका, उसे यदि किसी अन्य ने देखा है, तो सत्य के लिये, वह भी स्वीकार कर लेना। विज्ञान में एक शब्द इसके लिये दिया गया है 'क्वाण्टा।'

महावीर के काल तक इस व्याख्या की त्रिभंगी दृष्टि थी, अर्थात् कोई वस्तु है, नहीं है या है भी और नहीं भी, पर महावीर के अनेकान्तदर्शन के बाद यह दृष्टि सप्तभंगी हो गई। यह मौलिक परिवर्तन था।

श्रावक- तीर्थंकर का सामान्य अर्थ भवसागर तरने का यानी जन्म मृत्यु के बंधनों से मुक्ति दिलाने के मार्ग को दिखलानेवाला सर्वज्ञ पुरुष है। इसी के आधार पर तीर्थंकर के अनुयायियों को एक शब्द दिया गया है 'श्रावक।' यह साधारण शब्द नहीं है। यों इसका सामान्य अर्थ सुननेवाला है। पर श्रोता और श्रावक में बहुत फर्क है। श्रोता एक कान से सुनता है और संभव है दूसरे से निकाल भी दे, पर श्रावक का अर्थ सम्यक् सुनने से है, जो प्राणों से सुनता है। यह क्रिया दो तरह से होती है, एक तो प्रतिक्रमण, जो आक्रमण के विपरीत होती है। जहाँ-जहाँ मन की एकाग्रता पर आक्रमण हुआ है अर्थात् मन भटका है, पहले प्रतिक्रमण से वहाँ से समेटना केन्द्रीभूत करना अर्थात् चित्त को स्थिर करना। दूसरे चरण में प्रतिक्रमण से लौटे चित्त को तुरन्त आत्मस्थ करना। चित्त खाली नहीं रह सकता। तुरंत काम दो। जब वक्ता और श्रोता की एक फ्रिक्वेंसी, आवृत्ति की एक मानसिकता हो जाती है, तभी दिव्यध्वनि सुनी जा सकती है। भाषा इसमें वाधक नहीं होती। ऐसे समझ लीजिये कि इन दिनों जैसे संसद में ऐसा श्रवण उपकरण सांसदों के कानों में लगाया जाता है कि किसी भी भाषा में संसद में दिया गया वक्तव्य प्रत्येक सांसद अपनी भाषा में समझ लेता है, क्योंकि वह कानों में लगा उपकरण अनुवाद कर उसकी ही भाषा में संप्रेषण कर देता है। इसलिये समवशरण में तीर्थंकर की दिव्यध्वनि प्रत्येक प्राणी यदि अपनी भाषा में उन दिनों समझ सकता था, तो विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं रह जाता। पर प्रतिक्रमण से लौटे ध्यान को तत्काल आत्मरत करना अनिवार्य है।

७५, चित्रगुप्तनगर, कोटरा, भोपाल-३

धार्मिक शिक्षण शिविरों हेतु आमंत्रण शीघ्र भेजें

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर से विगत् १२ वर्षों से जैनधर्म का शिक्षण कार्य ग्रीष्मकालीन शिविरों के माध्यम से संपूर्ण भारत में अनवरत चल रहा है। ग्रीष्मकालीन अवकाश के अवसर पर अप्रैल, मई एवं जून माह में 'सर्वोदय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर' का आयोजन कर समाज में धार्मिक चेतना का जागरण संभव है। इन शिविरों में संस्थान के योग्य विद्वानों द्वारा जैन धर्म शिक्षा भाग १, २, छहढाला, भक्तामर स्तोत्र, इष्टोपदेश, भावनाद्वात्रिंशतिका, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, करणानुयोग दीपक भाग १, २, ३ आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय कराया जाएगा। इच्छुक महानुभाव संस्थान कार्यालय में पत्र व्यवहार करें जिससे शिविर आयोजन हेतु समुचित व्यवस्था की जा सके।

सम्पर्क सूत्र अधिष्ठाता- श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
वीरोदय नगर, जैन नसियां रोड सांगानेर जयपुर (राज.) ३०२०२९
०१४१-२७३०५५२, ३२४१२२२, ०९४१२२६४४५, ०९४१४७८३७०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाँदी के वर्क की हकीकत

श्रीमती मेनका गाँधी
(लेखिका पूर्व केन्द्रीय मंत्री हैं)

पूरे देश में या इस पृथ्वी पर वर्क का ऐसा कोई टुकड़ा नहीं है, जो मशीन से बना हो

बाजार में उपलब्ध चाँदी के वर्क जहरीले ही नहीं, बल्कि कैंसर-कारक भी हैं जिसमें सीसा, क्रोमियम, निकिल और कैडमियम जैसी धातुएँ भी मिली हुई हैं। जब ऐसी धातुएँ शरीर में खाद्य पदार्थ के रूप में जाएँगी, तो निश्चित ही ये कैंसर का कारण बनेंगी।

भारत में कानून है कि हर शाकाहारी खाद्यपदार्थ को हरे चिह्न से तथा मांसाहारी खाद्यपदार्थ को मैरून चिह्न से चिह्नित किया जाए। यदि कोई निर्माता अपने उत्पाद में गलत लेबल लगाकर हेराफेरी करता है, तो उसे कई साल की सजा हो सकती है। तो फिर मिठाई-निर्माता कानून बनने के बाद से अभी तक गिरफ्तार कैसे नहीं किये गए? दूध को शाकाहारी माना जाता है, ताकि शक्तिशाली डेयरी लॉबी को खुश किया जा सके। लेकिन हर मिठाई पर लगे वर्क (सिल्वर फॉयल) को हटाए बिना मिठाई को शाकाहारी नहीं कहा जा सकता।

'ब्यूटी विदाउट क्रूअल्टी' नामक पुणे के एक स्वयंसेवी संगठन ने खाद्य उत्पादों में मिलाए जानेवाले अवयवों पर एक विशिष्ट पुस्तिका प्रकाशित की है, जो पूरे वर्क उद्योग के बारे में बताती है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि वर्क कैसे बनाया जाता है। वर्क निर्माता वधशालाओं में जाकर पशुओं का चयन करते हैं। चाहे पशु नर हो या मादा, उसका बध करने से पहले यह देखने के लिये उसकी खाल टटोली जाती है कि वह मुलायम है या नहीं।

इसका सीधा अर्थ यह है कि विशेष रूप से इसी उद्योग के काम में लाने के लिये भारी संख्या में भेड़ बकरी और मवेशियों की हत्या की जाती है। हत्या के बाद पशुओं की खाल की गंदगी साफ करने के लिए बारह दिन तक टंकी में डुबाए रखा जाता है। इसके बाद मजदूर इस खाल को छीलते हैं, जिसे वे 'झिल्ली' कह कर पुकारते हैं। खाल की निचली पर्त केवल एक टुकड़े में ही उतारी जाती है। इन्हीं पर्तों को मुलायम करने के लिये एक प्रक्रिया के तहत 30 मिनट तक उबाला जाता है, बाद में सूखने के लिए उसे लकड़ी के तख्तों पर डाल दिया जाता है।

एक बार सूख जाने के बाद मजदूर इसे 19×15 वर्ग से.मी. के टुकड़ों में काटते हैं। इन्हीं टुकड़ों से थैली बनाते हैं, जिसे 'औजार' कहते हैं और उनका ढेर बनाया जाता है। बाद में यही ढेर एक बड़े चमड़े के थैले में भर दिया जाता है, जिसे खोल कहते हैं। अब इस खोल में चाँदी या सोने की बिल्कुल झीनी पत्तियाँ रखीं जातीं हैं। 'औजार' में रखी जानेवाली चाँदी की बारीक पत्तियों को 'अलगा' कहते हैं। अब इस 'अलगा' को औजार में रखकर फिर खोल में भरा जाता है। फिर घंटों तक कारीगर लकड़ी के हथौड़े से पीटते हैं, जिससे चाँदी के वर्क तैयार होते हैं। इसी वर्क को मिठाई की दुकानों पर भेजा जाता है।

आपको कुछ आँकड़ों की जानकारी होनी चाहिए। एक पशु की खाल से केवल 20-25 टुकड़े या एक थैली तैयार होती है। हर ढेर में 360 थैलीं होतीं हैं। एक ढेर से लगभग 30 हजार वर्क के टुकड़े बनते हैं, जो एक बड़ी मिठाई की दुकान में आपूर्ति के लिए कम ही हैं। एक किलोग्राम वर्क तैयार करने के लिए 12,500 पशुओं की हत्या की जाती है।

हर साल 30 हजार किलो (30 टन) वर्क की खपत केवल मिठाइयों में होती है। यही मिठाई हम सब खाते हैं। वर्क कम्पनियों द्वारा 2.5 करोड़ ढेरनुमा बुकलेट बनाई जाती हैं। ये कम्पनियाँ वधशालाओं से अपने सम्पर्कों को गुप्त रखती हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि इस उद्योग से जुड़े लोग उन्मुक्त तरीके से पशुओं की हत्याओं में लिप्त हैं। हृदय से हर धर्मावलम्बी यह जानता है कि वर्क मांसाहारी है, लेकिन वह लगातार निर्भीकता से इसका सेवन करता है। विस्मयकारी है कि सभी प्राणियों पर सभी प्रकार की हिंसा और अमानवीय कृत्यों का विरोध करनेवाले कत्लखानों से निकली चमड़ी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परत में बने वर्कों का धड़ल्ले से इस्तेमाल करते हैं। अनेक लोग झाँसा देकर खुद को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि यह मशीन से बना हुआ है। बिना क्रूरता, सुन्दरता एक श्रमसाध्य कार्य है। पूरे देश में या इस पृथ्वी पर वर्क का ऐसा कोई टुकड़ा नहीं है, जो मशीन से बना हो। इन्टरनेट पर मुझे जालंधर से एक व्यक्ति ने पत्र भेजा, जिसमें दावा किया गया था कि उसके पास जर्मनी के सहयोग से बनी एक ऐसी स्वचालित मशीन है, जो विशेषरूप से भारत में बने पूर्ण शुद्ध और वातावरण-नियंत्रित कागज में चाँदी के टुकड़ों को पीटकर वर्क बनाती है और इसका संचालन अनुभवी और प्रशिक्षित इंजीनियरों का दल करता है। मैंने इसका पता लगवाया। इस तरह की कोई फैक्ट्री नहीं मिली। यहाँ तक कि नाम भी नहीं। यह सरासर झूठ था। वर्क का उत्पादन मुख्यतः उत्तरी भारत में होता है। पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर और गया (बिहार में बौद्धों के पवित्र केन्द्र), कानुपर, मेरठ और वाराणसी (उत्तर प्रदेश में हिन्दुओं के पवित्र शहर), जयपुर, इन्दौर, अहमदाबाद और मुम्बई ऐसे मुख्य नगर हैं, जहाँ वर्क का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है। दिल्ली, लखनऊ, आगरा और रतलाम की वधशालाओं में वर्क बनाने के लिए पशुओं की नरम खाल से बनी थैलियाँ इन शहरों में भेजी जाती हैं।

वर्क केवल मांसाहारी खाद्य पदार्थ ही नहीं है, वरन यह मानवशरीर के लिए काफी हानिकारक भी है। चाहे शाकाहारी हो या मांसाहारी, इंसान चाँदी हजम नहीं कर सकता और इसके खाने से कोई लाभ भी नहीं है। नवम्बर 2005 में लखनऊ में वर्क पर इंडस्ट्रियल टॉक्सीकोलोजी रिसर्च सेन्टर द्वारा किए गए अध्ययन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बाजार में उपलब्ध चाँदी के वर्क जहरीले ही नहीं, बल्कि कैंसर-कारक भी हैं जिसमें सीसा, क्रोमियम, निकिल और कैडमियम जैसी धातुएँ भी मिली हुई हैं। जब ऐसी धातुएँ शरीर में खाद्य पदार्थ के रूप में जाएँगीं, तो निश्चित ही वे कैंसर का कारण बनेंगी। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इस उद्योग में काम करनेवालों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। वर्क से लपेटी गईं मिठाइयों, फल और पान को सेवन मत कीजिए। मिठाई-दुकानदार वर्क-वाली मिठाइयों पर मांसाहार का लेबल क्यों नहीं लगाते?

श्रुत महोत्सव 09 अनेकान्त ज्ञान मंदिर, बीना

प्रतिवर्ष की भाँति अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध-संस्थान का 17 वाँ स्थापनावर्ष समारोह त्रिदिवसीय 'श्रुत महोत्सव' (20 फरवरी से 22 फरवरी 09) के रूप में विविध धार्मिक आयोजनों के साथ श्रुतधारा परिसर में सोत्साह संपन्न हुआ।

कोठिया कृति 'नमन' बीना

हरदा (म.प्र.) में निःशुल्क लैंस प्रत्यारोपण नेत्र शिविर सम्पन्न

दयोदय पशुधन संरक्षक समिति हरदा (म.प्र.) के द्वारा विगत् 5 वर्षों से निःशुल्क लैंस प्रत्यारोपण नेत्र शिविर का आयोजन होता आ रहा है। इस वर्ष दिनांक 9 फरवरी 09 से 13 फरवरी 09 तक नेत्र शिविर का आयोजन डॉक्टर श्री ऋषभ सिंघई के द्वारा किया गया, जिसमें 45 रोगियों का आपरेशन सानंद सम्पन्न हुआ।

दिनांक 13 फरवरी 09 को समिति के अध्यक्ष श्री बी. एल. जैन के द्वारा रोगियों को चश्मा एवं दवाई का वितरण किया गया। समिति के सचिव श्री सत्यनारायण जी शर्मा, कोषाध्यक्ष महेन्द्र अजमेरा, उपाध्यक्ष प्रदीप अजमेरा, संयोजक अनूप बजाज व श्री ज्ञानेश चौबे, सोहनलाल उन्हाले, एवं रमेश पाटनी का पूरा सहयोग रहा। महिला मण्डल व वैश्यसमाज महिलाओं द्वारा दूध, चाय, फलों का वितरण किया गया। श्री मोहम्मद सलीम नूरी द्वारा रोगियों को निःशुल्क खिचड़ी का वितरण व श्री सत्यनारायण जी शर्मा द्वारा तीनों दिन-दलिया दूध का वितरण किया गया, जिसके लिए समिति सभी के प्रति आभार प्रकट करती है।

महेन्द्र अजमेरा, कोषाध्यक्ष
श्री दयोदय पशुधन संरक्षण समिति, हरदा (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान परिवेश में युवाशक्ति का दिशा-निर्धारण

सुरेश जैन 'सरल'

मैं पहले युवकों पर, जिनमें छात्र और छात्राएँ सम्मिलित हैं, एक छोटा सा विचार दे रहा हूँ-

'पड़ी हुई धुंधवाती सिगरेट से युवक / सूखे गुलदस्ते से छात्र / और दियासलाई की सीती हुई तीलियों सी छात्राएँ। शरीर के शून्य अंग लग रहे हैं। जिन्हें देखा भर जा सकता है, उपयोग कुछ नहीं / सभ्यता भ्रमित पशु सी कोलाहल में रम गई है / व्यवस्था- छात्र से पिटे शिक्षक सी, सुबक कर रह गई है / आदर्श फैशन में दब गया है / मेरे देश को कुछ हो गया है।' क्या हो गया है? यह अभी आगे खुलासा हो जायेगा।

अब मैं दूसरा विचार रखने के लिए अपनी दृष्टि महात्मा गाँधी की मूर्ति पर ले जाता हूँ। मूर्ति के पार्श्व में देश के ३२ करोड़ वे लोग भी खड़े हैं, जो कहीं/ किसी के माता-पिता भी हैं। उन्हें सम्बोधित करते हुए कहता हूँ। वे मेरी बात सुन रहे हैं-

बापू / तेरे पुत्रों के वे ओंठ / जिन्हें माँ-बाप के चरण चूमने थे / चूमते हैं झूठे जाम / वे हाथ, जो दरिद्र-नारायण की सेवा में लगे। उनसे अब जघन्य अपराध होने लगे / वे शीष जिन्हें झुकना था देशसेवार्थ / झुक गये हैं दो पैसे की नौकरी से अभागे / वे पैर, जो आजादी तक थे पहुँचे / रुक गये हैं- रोटी के आगे / और वे चितवनें/ जो कभी झपीं न थीं, झुकी रहती हैं कर्ज के मारे।

बंधु, ये विचार बन चुके हैं युवा शक्ति को लेकर। यदि ये सत्य लगते हैं, तो दोषी कौन है? युवक कि उनके गार्जियन / पालकगण / माता-पिता कौन? सत्य यहाँ एक नहीं, अनेक हैं। उसकी द्वितीय छवि भी मैं लाया हूँ, उसे भी देख लीजिए, निर्णय अपने आप सामने आ जावेगा कि युवा शक्ति किसी दिशा में खुद जा रही है या पहुँचाई जा रही है।

-आज सबसे अच्छा युवक वह लगता है, जो ब्लेक से गैस का सिलेन्डर लाकर घर देता है माँ के सामने।

-वह जो फिल्म की टिकट खड़े-खड़े दिला देता है।

-वह जो मिट्टी का तेल प्राप्त करा देता है।

-एक युवक कटा-फटा नोट कहीं किसी दुकान पर अँधेरे-उजाले में चला आता है, तो वह घर जाकर अपना गौरव बखान करता है और हम उसे समझदार मान बैठते हैं।

सच युवा शक्ति का उपयोग हम कुछ इसी तरह कर रहे हैं, अत: कोई यह पूछे कि युवक और युवा-शक्ति किस दिशा में जा रही है, तो कहना पड़ेगा- जहाँ हम ले जा रहे हैं।

अब जब योग्यता की कसौटी ही हमने बदल दी है, तो किस मुँह से हम योग्य युवक का वर्णन करें, सोच नहीं पाते! अनुशासनहीनता? बेरोजगारी? कपटपूर्ण व्यवहार? स्वार्थ? अवसरवादिता? आदि अनेक वजनदार शब्दों से हमने उसे लाद दिया है। फैशन/ बलात् वृत्ति/कामचोरी वगैरह उसने खुद सीख ली, बस समझिये- करेला नीम चढ़ गया।

मैं युवकों की बुराई करना नहीं चाहता, पर क्या करें। उनके समर्थन में कहने के लिए भी तो कुछ नहीं है। ११० करोड़ के देश में, प्रतिवर्ष ८० युवक वैज्ञानिक बन भी जावें, तो उनसे देश में प्रगति नहीं आती, वे स्वत: अपनी प्रगति के चक्कर में पड़े देखे गये हैं। हाँ वैज्ञानिक, डाक्टर, इंजीनियर, वकील, सरकारी-अधिकारी-कर्मचारी, नेता और बड़े व्यापारी। पहले अत्यधिक ऊँचाई तक पढ़ाई करने का अर्थ यह नहीं होता था कि अधिक पढ़कर अधिक धनोपार्जन करें, तब अधिक अच्छे स्तर की मानवता / नागरिकता की संरचना में पढ़ाई का/डिग्री का, उपयोग होता था। अब-- अब पढ़ लिखकर हर युवक पहले दिन से ही आर्थिक लाभ लेना चाहता है। आर्दश, देश-सेवा, सामाजिकता, स्वस्थ नागरिकता पर उसका ध्यान जा ही नहीं पाता।

आठवीं फेल आदमी किसी व्यवसाय में लग कर छ: हजार रुपये प्रतिमाह की आय पाता है, तो वह दो हजार पा रहे बी० ए० पास को छोटा मान बैठता है। बंधु हमने शिक्षा को नहीं, धन को मानदण्ड मान लिया है। धन के इस मान को पाने के लिए युवा शक्ति अध्ययन छोड़कर, अथवा अध्ययन के बाद, केवल धन की धुन में लगी नजर आ रही है।

एक शिक्षक ४ हजार वेतन लेकर भी दुखी है कि उसके पड़ोस का पनवाड़ी ६ हजार कमा लेता है। अत: शिक्षक महोदय पनवाड़ी से बड़ा बनने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्यूशनों का धंधा अपने जीवन में ले आते हैं, फिर परीक्षा के अवसर पर पेपर आउट कराकर धन बटोरते हैं, फिर कापी जाँचते समय भी। इसी मनसा को लेकर डॉक्टर, इंजीनियर और वकील आदि भी चल रहे हैं।

सत्य तो यह है कि अधिक पढ़-लिखकर अधिक कमाई करने का मन न बने, तो युवा शक्ति कभी विचलित नहीं हो सकती।

हमें मनुष्य के धंधे की सात्विकता देखकर उसे सम्मान देना चाहिए, पर हम वह नहीं कर रहे हैं। एक गणिका साल भर में पाँच लाख रूपये अर्जित करती है, तो क्या हम उसे आदर दें? एक तस्कर वर्ष भर में दस लाख का दान देता है, तो क्या वह पूज्य कहलाएगा?

एक मास्टर को दो हजार मिलते है, पर एक बाबू को दो हजार के साथ-साथ ऊपरी कमाई भी है, तब हम अपनी बिटिया के लिए मास्टर नहीं, बाबू का चुनाव कर बैठते हैं। अब हम किस से पूछें कि युवाशक्ति किधर जा रही है? युवाशक्ति को जब सही दिशा चाहिए थी, तब हम उसे वह न दे सके, और जब कु-दिशा में चली जाने लगी, तो कोसने बैठ गये। हम दोनों स्थान पर गलत सिद्ध हुए। युवाशक्ति तो ज्यों की त्यों रही आई। उपयोग बदल गये।

आज के एक सामान्य-युवक के भीतर भी, कहीं गहराई में एक संत बैठा है, यह पृथक् बात है कि युवक या हम, उसे देख-समझ ही नहीं पाते। युवा शक्ति के सम्मान में मेरे पास एक विचार है-

परख अग्नि में तप चुक कर वह, जिस पल सम्मुख आयेगा,
जैसा स्वर्ण निखरता तप कर, वह कुन्दन बन जावेगा।
अभी समय के चंद हथोड़े, तो सह लेने दो उसको,
स्वेद तलक फिर चंदन बनकर, मधुर गंध महकायेगा।

४०५ सरल कुटी, गढ़ाफाटक जबलपुर

साहित्याचार्य डॉ० (पं०) पन्नालाल जी जैन की स्मृति में निःशुल्क स्वास्थ्य परीक्षण शिविर

जैन जगत् के सुप्रसिद्ध साहित्य मनीषी एवं शिक्षाविद् साहित्याचार्य डॉ० (पं०) पन्नालाल जी जैन की ९८ वीं जन्मजयंती पर सागर नगर में भाग्योदय तीर्थ चिकित्साल्य एवं रोटरी क्लब, सागर द्वारा दिनांक ५ मार्च २००९ को बृहद् स्वास्थ्य परीक्षण एवं रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। प्रारंभ में साहित्याचार्य जी की प्रतिमा पर शहर के गणमान्य नागरिकों ने माल्यार्पण कर श्रृद्धासुमन अर्पित किये। तत्पश्चात् कुंडलपुर के बाबा व आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चित्रों के समक्ष दीप प्रज्ज्वलन जैन पंचायत सभा, सागर के अध्यक्ष श्री महेश बिलहरा नगरपालिक निगम, सागर के लोक निर्माण विभाग सभापति श्री राजेश केशरवानी भाग्योदय तीर्थ चिकित्सालय, सागर के निदेशक डॉ० अमरनाथ एवं कवि श्री नेमीचन्द्र जी 'विनम्र' ने किया।

शिविर में ४०० लोगों की ब्लडशुगर, १८५ लोगों का ब्लड ग्रुप परीक्षण एवं २२५ लोगों का ब्लडप्रेशर व हृदय-परीक्षण किया गया। ५० लोगों की ई सी जी की गई। इसी क्रम में १७ युवाओं ने जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर रक्तदान किया। आभार श्री डॉ० राजेश, शिशु विशेषज्ञ ने माना।

प्रेषक- राकेश कुमार जैन, बरगी हिल्स, जबुलपुर (म.प्र.)

जबलपुर नगर के चार प्रबुद्ध सम्मानित

संस्कारधानी के उन्नत संस्कार स्पष्ट करनेवाली लेखनी के धनी, वरिष्ठ साहित्यकार श्री सुरेश जैन सरल को, उनके द्वारा लिखित आचार्य विशुद्धसागर जी का जीवन-चारित्रग्रन्थ 'आदर्श श्रमण' के लिए गजरथ समिति टीकमगढ़ एवं भक्तमंडल जबलपुर के अवधान में प्रतिष्ठासमिति के प्रधान श्री कोमलचंद सुनवाहा सहित श्री मनोज मड़वैया एवं श्री चक्रेश टड़ैया ने तिलक, श्रीफल, माला आदि से सम्मानित करते हुए प्रतीकचिन्ह एवं इकतीस हजार की राशि भेंट की। ज्ञात हो कि गत ढाई दशक में यह सरल जी का नौवाँ 'संत चरित्र' है।

इस अवसर पर नगर के पं० नेमीचंद जैन, डॉ० एल० सी० जैन एवं डॉ० श्रेयांश बड़कुल को भी, उनके बौद्धिक अवदान के लिये, सम्मानित किया गया। आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने सरल जी को आशीर्वाद देते हुए दो ग्रन्थ प्रदान किये।

भारतभूषण जैन, ४०५, गढ़ाफाटक, जबलपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं० रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्त्ता- पं० संजीव जी जैन, जयपुर।

जिज्ञासा- मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय-९, पृष्ठ ३२१ (जयपुर प्रकाशन) पर मिथ्यादृष्टि के भी व्यवहार-सम्यक्त्व कहा गया है, क्या यह आगमसम्मत है?

समाधान- जैन शास्त्रों में सम्यक्त्व दो प्रकार का कहा गया है, बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा-४१ की टीका में इस प्रकार कहा है,- "**शुद्धजीवादितत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणम् सरागसम्यक्त्वाभिधानम् व्यवहारसम्यक्त्वं विज्ञेयं।--- वीतराग - चारित्राविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति।**

अर्थ- शुद्ध जीवादि तत्वार्थों का श्रद्धानरूप सराग-सम्यक्त्व नाम से कहा जाने वाला व्यवहार-सम्यक्त्व जानना चाहिए। वीतरागचारित्र के बिना नहीं होनेवाला, वीतराग-सम्यक्त्व नामक निश्चयसम्यक्त्व जानना चाहिए।

अब प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न पर विचार करते हैं। प्रश्न यह है कि उपर्युक्त सरागसम्यक्त्व अथवा व्यवहार-सम्यक्त्व प्रथम गुणस्थान में होता है, या नहीं? इस संबंध में समयसार गाथा ३७३ की टीका में इस प्रकार कहा गया है-

मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनां तथैव चारित्रमोहनीयस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति षड्द्रव्यपंचास्तिकाय-सप्ततत्त्वनवपदार्थादिश्रद्धानज्ञानरागद्वेषपरिहाररूपेण भेदरत्नत्रयात्मकव्यवहारमोक्षमार्गसंज्ञेन व्यवहारकारण-समयसारेण साध्येन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्म-तत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मक-निर्विकल्पसमाधिरूपेणानंतकेवलज्ञानादिचतुष्टयव्यक्ति-रूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमय-सारेण विना खल्वज्ञानिजीवो रुष्यति तुष्यति च।

अर्थ- मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के तथा चारित्र-मोहनीय के उपशम, क्षयोशम व क्षय होने से छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि का श्रद्धान और ज्ञान के साथ-साथ रागद्वेष के त्यागरूप ऐसा भेदरत्नत्रय तदात्मक व्यवहारमोक्षमार्ग ही है नाम जिसका, ऐसे व्यवहार-कारणसमयसार के द्वारा जो साध्य है और विशुद्ध ज्ञान-दर्शन-स्वाभाव जो शुद्धात्मतत्त्व, उसका समीचीन श्रद्धान-ज्ञान और आचरण रूप, ऐसा जो अभेदरत्नत्रय तदात्मक जो निर्विकल्पसमाधि-स्वरूप है तथा जो अनंतकेवल ज्ञानादि-चतुष्टय की अभिव्यक्तिरूप कार्यसमयसार का उत्पादक है, ऐसे निश्चय कारणसमयसार के हुए बिना यह अज्ञानी जीव रोष करता है और संतुष्ट होता है।

२. श्री अमृतचन्द्राचार्य ने पंचास्तिकाय गाथा १०७ की टीका में इस प्रकार कहा है-

भावाः खलु कालकलितपंचास्तिकायविकल्प-रूपा नवपदार्थास्तेषां मिथ्यादर्शनोदयापादिताश्रद्धाना-भावस्वभावं भावांतरं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं शुद्धचैतन्य-रूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम्।

अर्थ- कालसहित पंचास्तिकाय और विकल्परूप नव पदार्थ इनको भाव कहते हैं। मिथ्यादर्शन के उदय से उत्पन्न हुआ जो अश्रद्धान, उसका अभाव होने पर पंचास्तिकाय और नवपदार्थ का श्रद्धान, वह व्यवहार-सम्यग्दर्शन है और यह शुद्ध आत्मतत्व के निश्चय का बीज है।

सारांश- उपर्युक्त प्रमाण नं० १ में यह स्पष्ट कहा है कि व्यवहारसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप व्यवहार-मोक्षमार्ग में मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का (दर्शन-मोहनीय की तीन तथा अनन्तानुबंधी की चार = सात) उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम होता ही है। अर्थात् सात प्रकृतियों के उपशम आदि न होने पर व्यवहारसम्यक्त्व नहीं होता। उपर्युक्त दूसरे प्रमाण से भी स्पष्ट है कि व्यवहारसम्यग्दर्शन में मिथ्यादर्शन का उदय नहीं रहता है। अत: यह स्पष्ट है कि व्यवहारसम्यक्त्व मिथ्यादृष्टि जीव के नहीं होता। किसी भी आचार्य ने, किसी भी शास्त्र में ऐसा नहीं कहा है कि मिथ्यादृष्टि के व्यवहार-सम्यक्त्व होता है। यदि हम गुणस्थान की अपेक्षा विचार करें, तो चौथे से सातवें गुणस्थान तक शुभोपयोग अवस्था में व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है, तथा निश्चयचारित्ररूप शुद्धोपयोग के साथ होनेवाला निश्चयसम्यग्दर्शन सप्तम गुणस्थान से आगे तक रहता है।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने **सम्यक्त्वसार शतकम्** गाथा-८१ के विशेषार्थ में इस प्रकार कहा है- 'दर्शनमोह के उपशमादि द्वारा तत्त्वार्थश्रद्धान प्राप्त करते हुए चतुर्थ गुणस्थान में जो सम्यग्दर्शन होता है, वह व्यवहार-सम्यग्दर्शन और तत्पूर्वक अणुव्रत-महाव्रतादि का पालन करना सो व्यवहार सम्यक्चारित्र एवं उनके साथ जो सचेष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्रूज्ञान हो वह व्यवहार सम्यग्ज्ञान होता है।

बृहद्द्रव्यसंग्रह में भरतचक्रवर्ती के क्षायिक सम्यग्दर्शन को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है यथा '**एषाम् भरतादीनाम् यत् सम्यग्दर्शनम् तत्तु व्यवहार सम्यग्दर्शनम्।**'

अर्थ- इस प्रकार इन भरतादिकों के जो सम्यग्दर्शन है, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है। यहाँ यह भी जानना चाहिए कि कुछ स्वाध्यायी लोगों की ऐसी धारणा है कि प्रथम नरक में स्थित राजा श्रेणिक के जीव के निश्चय सम्यग्दर्शन है अथवा निश्चय-व्यवहार दोनों सम्यग्दर्शन हैं। ऐसे जीवों की धारणा आगम सम्मत नहीं है, गलत है। क्योंकि निश्चय सम्यक्त्व, निश्चय चारित्र के बिना कभी नहीं होता। नरक में निश्चय सम्यक्चारित्र का नितान्त अभाव है। अत: राजा श्रेणिक के जीव के मात्र क्षायिक-सम्यक्त्वरूप व्यवहारसम्यग्दर्शन मानना ही आगमसम्मत है।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के व्यवहारसम्यक्त्व मानना आगमसम्मत नहीं है।

प्रश्नकर्त्ता- सौ० कुसुमकुमारी, जयपुर।

जिज्ञासा- प्रात:काल आहार बनाना कब प्रारंभ करना चाहिए।

समाधान- वर्तमान में देखा जाता है कि जिन स्थानों पर मुनिराज आदि का चातुर्मास चल रहा होता है, वहाँ भक्तगण सूर्योदय से पूर्व ही भोजन बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देते है, अर्थात् उनकी रसोई में गैस का जलना प्रारम्भ हो जाता है और कुकर की सीटी बोलने लगती है। यह प्रयास उचित नहीं है। श्रावकाचारों के अनुसार सूर्योदय के पश्चात् ही कूटना-पीसना, आग जलाना आदि कार्य होना चाहिए। अन्यथा सूर्योदय से पूर्व उपर्युक्त क्रियाओं से उत्पन्न आहार में रात्रिभोजन का दोष लगता है। घर में भी यदि कोई सदस्य सूर्योदय से पूर्व ही देशान्तर जा रहा हो, तो उसके लिए पहले दिन ही शाम को भोजन बनाकर रखना उचित है। सूर्योदय से पूर्व भोजन बनाकर देना रात्रि भोजन सदृश दोषपूर्ण कहलाएगा।

हमको चामुर्मास आदि के दौरान या अन्य समयों में सर्वप्रथम सूर्योदय के बाद भक्ति-भाव से जिनेन्द्रपूजा करनी चाहिए। तदुपरान्त आहार आदि बनाने की क्रिया या कूटना-पीसना आदि प्रारम्भ करना चाहिए। कुछ दाताओं का ऐसा भी कहना है कि यदि इतनी जल्दी आहार बनाना प्रारम्भ न करें, तो आहार की इतनी सारी वैरायटी कैसे बनेंगी? ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि साधु को वही सात्त्विक आहार देना चाहिए, जो वे स्वयं करते हों। पूरे दक्षिण भारत में यही परम्परा है। रात्रि में भोजन बनाना प्रारम्भ करके अधिक वैरायटी बनाना किसी भी प्रकार उचित नहीं।

प्रश्नकर्त्ता- पं० मनीष शास्त्री, जबलपुर।

जिज्ञासा- क्या मुनिराज पेड़-पौधे उखाड़ने का, जमीन खोदने का, धर्मशाला आदि बनाने का निर्देश दे सकते हैं? चरणानुयोग के ग्रन्थों के अनुसार सप्रमाण उत्तर दीजिए।

समाधान- उपर्युक्त क्रियाओं का निर्देश तो आरम्भ-त्याग-प्रतिमा नामक आठवीं प्रतिमाधारी श्रावक भी नहीं दे सकता, फिर अहिंसामहाव्रतधारी मुनियों का तो प्रश्न ही नहीं है। कुछ आगमप्रमाण इस प्रकार हैं-

१. श्री मूलाचार गाथा ३५ की टीका में इस प्रकार कहा है- '**सावद्ययोगेभ्यः आत्मनो गोपनं गुप्तिः। सा च मनोवाक्कायक्रियाभेदात्त्रिप्रकाराः।**'

अर्थ- सावद्य अर्थात् पापयोग से आत्मा का गोपन अर्थात् रक्षण करना गुप्ति है। इसके मन-वचन और काय का क्रिया के भेद से तीन भेद हो जाते हैं। अर्थात् सावद्य परिणामों से मन को रोकना मनोगुप्ति है, सावद्य वचनों को नहीं बोलना वचन-गुप्ति है और सावद्य काययोग से बचना कायगुप्ति है।

२. श्रीमूलाचारप्रदीप में इस प्रकार कहा है- '**शिलादि--- योगैराद्यव्रताप्तये।**' (श्लोक नं. ५६ से ६०)

अर्थ- शिला, पर्वत, धातु, रत्न आदि में बहुत से कठिन पृथ्वीकायिक जीव रहते हैं तथा मिट्टी आदि में बहुत से कोमल पृथ्वीकायिक जीव रहते हैं तथा उनके स्थूल-सूक्ष्मादि अनेक भेद हैं। इसलिए मुनिराज अपने हाथ से, पैर से, ऊँगली से, लकड़ी से, सलाई से या खप्पर से पृथ्वीकायिक जीवसहित पृथ्वी को न खोदते हैं, न खुदवाते है, न उस पर लकीरें करते हैं न कराते हैं, न उसे तोड़ते हैं, न तुड़वाते हैं, न उस पर चोट पहुँचाते हैं, न चोट पहुँचवाते हैं तथा अपने हृदय में दयाबुद्धि धारण कर न उस पृथ्वी को परस्पर रगड़ते हैं, न उसको किसी प्रकार की पीड़ा देते हैं। यदि कोई अन्य भक्त पुरुष उस पृथ्वी को खोदता है, या उस पर लकीरें करवाता है, उस पर चोट मारता है, रगड़ता है या अन्य किसी प्रकार से उन जीवों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीड़ा पहुँचाता है, तो वे योगी उसकी अनुमोदना भी नहीं करते। इस प्रकार वे मुनिराज अहिंसा महाव्रत को प्राप्त करने के लिए उन पृथ्वीकायिक जीवों की विराधना कभी नहीं करते।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों के संबंध में **'हरितांकुर--- पापधीः'** (श्लोक नं. ८५ से ९०) में इस प्रकार कहा है-

'मुनिराज मन-वचन-काय की शुद्धता धारण करने के कारण हरित-अंकुर, बीज, पत्र, पुष्प आदि के आश्रित रहनेवाले वनस्पतिकायिक जीवों का छेदन, भेदन, पीड़न, वध, बाधा, स्पर्श और विराधना आदि न तो स्वयं करते है और न दूसरों से कराते हैं। मुनियों को गमन-आगमन आदि के करने में काई और फूलन आदि में रहनेवाले अनन्तकायजीवों की हिंसा भी कभी नहीं करनी चाहिए। वनस्पति का समारम्भ करने से, वनस्पतिकायिक जीव और वनस्पतिकाय के आश्रित रहनेवाले जीवों की हिंसा अवश्य होती है। इसलिए अर्हन्-मुद्रा अथवा जिनलिंग को स्वीकार करनेवाले मुनियों को अपने जीवनपर्यन्त मन-वचन-काय से उन दोनों प्रकार की वनस्पति का समारम्भ नहीं करना चाहिए। जो मुनि वनस्पति में प्राप्त हुए इन जीवों को नहीं मानता, उसे जिनधर्म से बाहर मिथ्यादृष्टि और पापी समझना चाहिए।

इसी प्रकार जलकायिक, वायुकायिक और अग्निकायिक जीवों की विराधना से मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से दूर रहना अहिंसा महाव्रत में आता है।

३. कार्तिकेयानुप्रेक्षा में **हिंसारम्भो --- धम्मो।** (गाथा नं० ४०६) की टीका का अर्थ इस प्रकार कहा है- 'देवपूजा, चैत्यालय, संघ और यात्रा वगैरह के लिए मुनियों का आरम्भ करना ठीक नहीं है। तथा गुरुओं के लिए वसतिका बनवाना, भोजन बनाना, सचित्त जल-फल-धान्य वगैरह का प्रासुक करना आदि आरम्भ भी मुनियों के लिए उचित नहीं हैं, क्योंकि ये सब आरम्भ, हिंसा के कारण हैं। वसुनन्दी आचार्य ने मुनि के आचार बतलाते हुए लिखा है- 'निर्ग्रन्थ मुनि पाप के भय से अपने मन-वचन और काय को शुद्ध करके जीवनपर्यन्त के लिए सावद्ययोग का त्याग कर देते हैं। तथा मुनि हरिततृण-वृक्ष-छाल-पत्र-कोंपल-कन्दमूल-फल-पुष्प और बीज वगैरह का छेदन-भेदन न स्वयं करते हैं और न दूसरों से कराते हैं। तथा मुनि पृथ्वी को खोदना, जल से सींचना, अग्नि को जलाना, वायु को उत्पन्न करना और त्रसों का घात न स्वयं करते है, न दूसरों से कराते हैं और यदि कोई करता हो, तो उसकी अनुमोदना भी नहीं करते।

'देवगुरुण णिमित्तं --- अलियं' (गाथा-४०७) की टीका में इस प्रकार कहा है, **भावार्थ-** गृहस्थी बिना आरम्भ किये नहीं चल सकती और ऐसा कोई आरम्भ नहीं है, जिसमें हिंसा न होती हो, अतः गृहस्थ के लिए आरम्भी हिंसा का त्याग करना शक्य नहीं है। किन्तु मुनि गृहवासी नहीं होते, अतः वे आरम्भी हिंसा का भी त्याग कर देते हैं। वे केवल अपने लिए ही आरम्भ नहीं करते, बल्कि देव और गुरु के निमित्त से भी न कोई आरम्भ स्वयं करते हैं, न दूसरों से कराते हैं और न ऐसे आरम्भ की अनुमोदना ही करते हैं।

४. प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार श्लोक नं. १०४ से १०६ में आरम्भत्याग नामक अष्टम प्रतिमा के धारी का स्वरूप बताते हुए इस प्रकार कहा है- ''आरम्भत्यागप्रतिमा को धारण करनेवाले धीर-वीर व्रती पुरुषों को अपने आरम्भ का त्याग करने के लिए मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से पृथ्वी खोदना, कपड़े धोना, दीपक मसाल आदि का जलाना, वायु करना, वनस्पतियों को तोड़ना, काटना, छेदना, गेहूँ, जौ आदि बीजों को, कूटना-पीसना--- आदि निन्द्य आरम्भों का बहुत शीघ्र त्याग कर देना चाहिए।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि मुनिराज अहिंसा महाव्रत के पालन के लिए पाँचों प्रकार के स्थावर जीवों की हिंसा के मन-वचन-काय एवं कृत-कारित-अनुमोदना से त्यागी होते हैं।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा-२८२ ००२, उ० प्र०

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भली न प्रीत।
काटे चाटे श्वान के, दुहूँ भाँति विपरीत॥
ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो बारे अंग, सीरे पै कारो करै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मध्यांचल समिति के अध्यक्ष एवं महामंत्री का निवेदन

मध्यांचल समिति के नवनिर्वाचित अध्यक्ष स० सि० सुधीर जैन, कटनी (म० प्र०), एवं महामन्त्री श्री संजय जैन 'मेक्स', इन्दौर (म० प्र०) ने दिगम्बर जैन समाज के समक्ष कुछ सुझाव प्रस्तुत किये है, जो इस प्रकार हैं-

१. भगवान ऋषभनाथ की जन्म जयंती एवं निर्वाणदिवस सभी गाँवों, कस्बों, शहरों और में पूरे धूमधाम से मनाया जाय।

२. जैन समाज का हर व्यक्ति अपने नाम के बाद 'जैन' अवश्य लिखे और उपनाम जैसे बाझल, गोहिल, शाह, मेहता, कासलीवाल, पटेरिया आदि शब्द बाद में लिखें, जिससे जनगणना में जैनों की संख्या आंकी जा सके।

३. जैन मूर्तियों की सुरक्षा हेतु जैन मंदिरों की वेदियों की फोटो तथा मूर्तियों की संख्या निश्चितरूप से रेकॉर्ड में रखें तथा मंदिर के गर्भगृह एवं बाहरी दरवाजों को मजबूती देकर सुरक्षित बनाएँ।

४. मार्च २००९ में होने वाली जनगणना में प्रत्येक गाँव, शहर में जैन परिवार के सदस्यों की संख्या सुनिश्चित करें तथा उसकी सूचना हमें भी देवें। अल्पसंख्यक जैन समाज की संख्या जिलावार निश्चित की जाय।

५. शहरों, गाँवों कस्बों में खुलेआम मांस, मछली, मुर्गा बेचनेवालों का विरोध किया जाय। यह कार्य सिर्फ निश्चित स्थानों पर परदे के अन्दर ही किया जा सकता है। नगरपालिका एवं निगम अधिकारियों को ऐसा करने हेतु कानूनन बाध्य करें।

६. प्रजातंत्र में हर एक जैन को अपने मताधिकार का उपयोग अवश्य करना चाहिए। अल्पसंख्यक समाज द्वारा ऐसे अहिंसक नेताओं का चयन किया जाय जो मांस के व्यापार का विरोध करें।

७. तीर्थक्षेत्रों पर जैन मंदिरों का निर्माण जैन वास्तु कला के अनुसार कराया जाय तथा क्षेत्र के विकास के लिए आगामी २०-३० वर्षों को ध्यान में रखते हुए मास्टर प्लान बनाकर विकास किया जाय।

८. आपके नगर के समीप यदि कलात्मक जैन तीर्थक्षेत्र हैं, जो भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी से सम्बद्ध नहीं हैं, तो उन्हें सम्बद्ध करावें, सम्बद्धता फार्म मध्यांचल समिति के कार्यालय से अथवा भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रधान कार्यालय-हीराबाग, सी.टी. टैंक, मुंबई- ४०० ००४ से प्राप्त किया जा सकता है।

९. भारतवर्ष में जैनों द्वारा करीब २४ प्रतिशत का राजस्व कर सरकार को दिया जाता है, अतएव जैन समाज संगठित होकर अहिंसक समाज की उत्तरदायी प्रजातांत्रिक भूमिका का उद्घोष करने हेतु संकल्पित हो।

समाज के सभी साधर्मी बन्धुओं से निवेदन है कि वे उपर्युक्त बिन्दुओं पर गहन चिंतन करें और उसे कार्यरूप में परिणित कर सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

स. सिं. सुधीर कुमार जैन, कटनी
अध्यक्ष
मो. ०९४२५१५३७२२

संजय जैन 'मैक्स', इन्दौर
महामंत्री
०९४२५०५३५२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

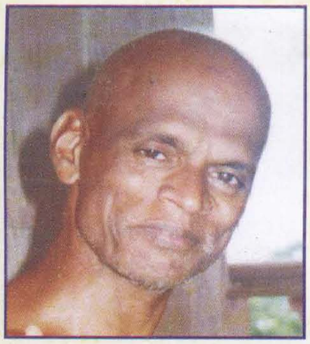

मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ

१
मैं
अपनी शान में
खो गया
इसलिए दुनिया की
दृष्टि में पाषाण था
इसलिए मैं परेशान था
पर आज सौभाग्य का दिन है
शान की शान रखनेवाले
एक कलाकार ने मुझमें
ऐसी कला भर दी,
आज मैं निरा-पाषाण खण्ड
नहीं रहा
एक पूजनीय मूरत
बन गया।

२
कर्मों की
कौम को
होम करना है
तो
ऊँ का जाप करो तुम
मोम सा पिघल जाय
मोम सा
निर्मल बन
रोम-रोम से
सोम का झरना
फूट पड़े

३
काल अनंत से
कुंठित है
आत्म कली में
सुरभित सौरभ
अमिट अमित और
अनुपम है
पर
वंचित है
खटक रहा है
चेतन भ्रमर
बाह्य जगत में
शोध रहा है
विषय-विषैले
पुष्पों पर अहर्निश मँड़रा रहा है

४
सूर्य कांति सी
चंद्र कांति सी है
जिस ज्ञान की आभा
ऐसे आलोक में
आलोकित होता
निजात्म का चेहरा।

प्रस्तुति - प्रो० रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

UPHIN/2006/16750

मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

ना सही

माना कि हममें
भगवान् बनने की
योग्यता है
पर इस बात पर
हम इतना
अकड़ते क्यों हैं?
(वह तो किसी
चींटी में भी है)
सवाल सिर्फ
योग्यता का नहीं
हू-ब-हू होने का है
स्वयं को
भगवान् मानने/मनवाने का नहीं
स्वयं भगवान्
बन जाने का है
हम अपने को
जरा ऊँचा उठायें
इस बार
ना सही भगवान्,
एक बेहतर
इन्सान बन जाएँ।

अगर

उसने सोचा
जब वह पहली बार
नीड़ से बाहर
पैर रखेगा
तब कोई आकर
उसे थाम लेगा
आँचल से लगा कर
दुलार लेगा
पंख सहला कर
उसे उड़ने का साहस देगा
दो-चार कदम
उसके साथ चलेगा
पर हुआ यह
कि उसने
न पैर बाहर रखा
न पंख खोले
न उड़ा
सोचता ही रहा
अगर ऐसा न हुआ
तो क्या होगा?

'पगडंडी सूरज तक' से साभार

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org